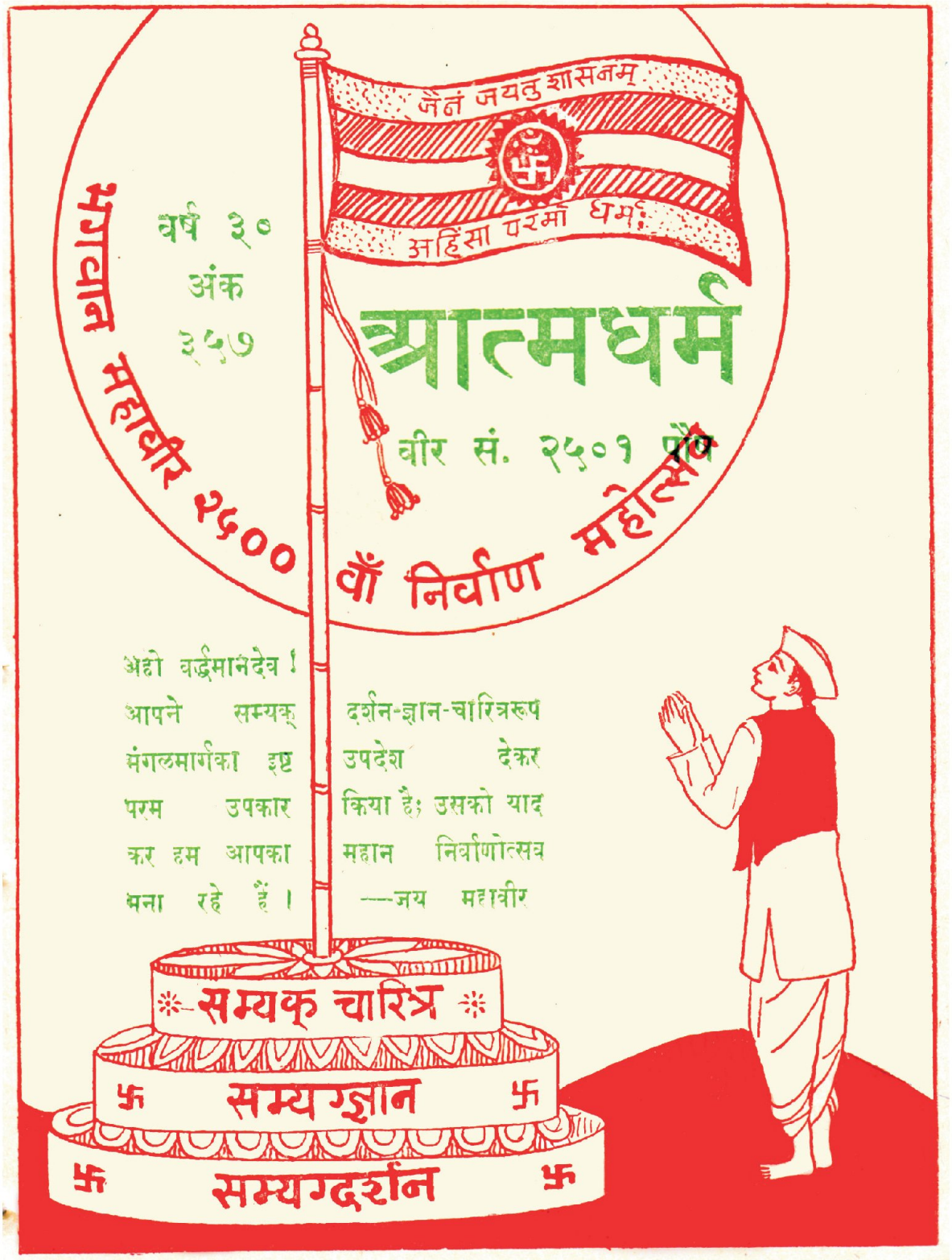

जैनं जयतु शासनम्
अहिंसा परमो धर्मः
वर्ष ३०
अंक ३५७
आत्मधर्म
वीर सं. २५०१ पौष
भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव
अहो वर्द्धमानदेव! आपने सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मंगलमार्गका इष्ट उपदेश देकर परम उपकार किया है; उसको याद कर हम आपका महान निर्वाणोत्सव मना रहे हैं। —जय महावीर
सम्यक् चारित्र
सम्यग्ज्ञान
सम्यग्दर्शन

आत्मधर्म के प्रचार एवं विकास के लिये—

'आत्मधर्म' सभी जैनों का प्रिय पत्र है, उसकी स्वाध्याय करके सभी साधर्मीजन आत्महित की प्रेरणा लेते हैं और आनंदित होते हैं। आत्मधर्म में और भी नये-नये विभाग दिये जायें तथा उसकी पृष्ठसंख्या भी बढ़ाई जाये, इस हेतु से जिज्ञासु पाठकों की ओर से जो रकम आई है, उसकी नोंध यहाँ दी जाती है। आत्मधर्म की खास नई योजना आपके ध्यान में होगी कि—उसमें एक फार्म-आठ पृष्ठ (तीन हजार प्रति अर्थात् सब मिलकर २४००० पृष्ठ) अधिक देने का खर्च रुपये ४०० गिना जाता है।

२५, प्रीतिबेन बृजलाल शाह, जलगाँव
२१, प्रदीपकुमार झांझरी, उज्जैन
७, मेसर्स गुलाब जनरल स्टोर्स, कोटा
२१, फूलचंद्रजी विमलचंद्र झांझरी, उज्जैन
११, प्रभावतीबेन नन्हेलाल जैन, जमशेदपुर
२४, सविताबेन रसिकलाल जैन, अजमेर
१०१, कसुंबाबेन बालुभाई वोरा, कलकत्ता
१०१, इन्दुबेन रमणिकलाल जैन, कलकत्ता
११, पं. बंसीधर शास्त्री, बरोडा
२१, अश्विनकुमार कनैयालाल जैन, दाहोद
५, जसवंत खेमराज जैन, खैरागढ़
२१, जमनादास चत्रभुज कोठारी, अमरावती
५०, दयाबेन (श्रीपालजी जैन), दिल्ली
५१, जेकुंवरबेन शाह, कलकत्ता
२०१, प्राणलाल परसोत्तमदास जैन, बम्बई
२००, अमृतलाल सेजपाल जैन, बम्बई
४०१, मीनाबेन नगीनदास जैन, कोइम्बतुर
२०१, मगनलाल तलकशी शाह, सुरेन्द्रनगर
२०१, विजयाबेन मणिलाल डगली, वींछिया
२०१, वेणीलाल छगनलाल महेता, अंकलेश्वर
४००, नेमचंद मोतीलाल जैन, दिल्ली
५१, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, इंदौर
११, सविताबेन कोठारी, बेंगलोर
४०१, केशवलाल बृजलाल कोठारी, मोडासा
४०१, चंद्रकांत जैन, भिलाई
४०१, मगनलाल लक्ष्मीचंद जैन, भिलाई
४०१, प्रेमीलाबेन जे. शाह, सिकंदराबाद
२०, सुकुमार जैन, मेरठ
५१, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, मद्रास
४०१, दयाकुमार पानाचंद कामदार, वरोडा
ह. मनुभाई कामदार
१०१, एस.पी. मोहनलालजी जैन, बेंगलोर

(इसके उपरांत एक मुमुक्षु साधर्मी बहन की ओर से रु. ५०१,
आत्मधर्म-प्रचार तथा बालसाहित्य के लिये आये हैं।)

आत्मधर्म के इस अंक में एक फॉर्म (३००० प्रति माने २४००० पृष्ठ) अधिक देने का खर्च श्रीमती प्रेमीलाबेन जे.शाह, सिकंदराबाद की ओर से आये हैं – इसके लिये धन्यवाद!

[तंत्री : पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार सं. – ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

जीव का
सत्य जीवन

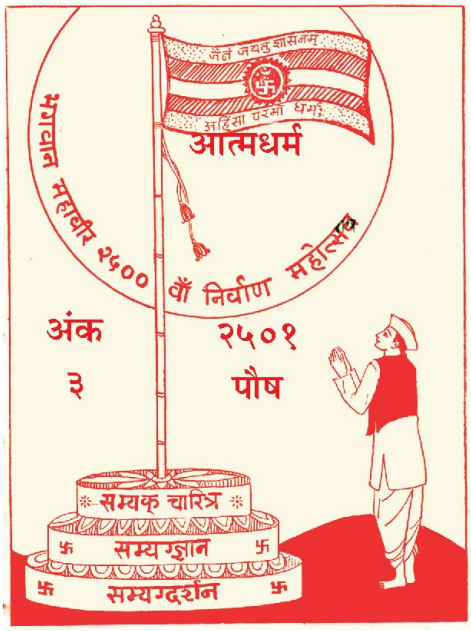

महावीर का
सत्य सन्देश

उपयोगलक्षण जीव है अरु यही सच्चा जीवन है;
यह जीओ और बता दो सबको-वीर का संदेश है।
चेतन-जीवन वीरपंथ में, नहीं देहजीवन सत्य है;
चेतन रहे निजभाव में बस! यही सच्चा जीवन है॥

भगवान महावीर के संदेश के नाम पर अभी जोर-शोर से प्रचार चल रहा है कि 'जीओ और जीने दो'।—परंतु उसमें मूलभूत यह बात समझना नितांत आवश्यक है कि 'जीव का जीवन' क्या है? जीव का सच्चा जीवन क्या है-इसकी पहचान के बिना स्वयं ऐसा जीवन किसप्रकार जीवेगा? और दूसरों को भी ऐसा जीवन जीने का किसप्रकार दिखायेगा?

— अत: अब हमें यह देखना है कि जीव का सच्चा जीवन कैसा है? क्या शरीर में बैठ रहना, श्वास लेना, चलना-फिरना, यह जीव का जीवन है? अथवा आयु के आधीन देहपींजरे में फँसे रहना, यह जीवन है?—नहीं; यदि ऐसा हो, तब तो फिर देह के बिना आत्मा जीता ही न रहे। क्या सिद्धभगवंतों देह

एवं भोजनादि के बिना ही जीवन नहीं जी रहे हैं ?—जी रहे हैं, इतना ही नहीं, अपितु वे ही सच्चा और सुखी जीवन जी रहे हैं।

वे किससे जीते हैं ?—उपयोग से जीते हैं। उपयोग ही जीव का सच्चा जीवन है। सर्वज्ञ महावीर का सच्चा संदेश यह है कि—उपयोग ही जीव का जीवन है, उपयोग से ही तुम जीवंत हो; तुम्हें जीने के लिये (जीवरूप से रहने के लिये) उपयोग से अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। अतः सत्य स्वाधीन और सुखी जीवन जीना चाहते हो तो उपयोगस्वरूप तुम्हारे आत्मा को पहचानो; तथा देहादि के द्वारा जीने की बुद्धि छोड़ दो। देह और उपयोग ये दोनों सर्वथा भिन्न वस्तु हैं; ऐसी भिन्नता को पहचानो और शुद्धउपयोगरूप स्वयं होकर आनंदमय जीवन जीओ।

भगवान महावीर ऐसा आनंदमय जीवन जीते हैं; और
जगत के जीवों को भी ऐसा ही जीवन जीने का उपदेश दिया है।
—यह है भगवान महावीर का संदेश!

मेरी मनोकामना [एक तत्त्वजिज्ञासु का पत्र]

'आत्मधर्म' पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। सबसे ज्यादा प्रसन्नता इस बात से हुई कि आपने अब युवकों एवं बालकों में भी आत्मधर्म के प्रति रुचि बढ़ाने हेतु कुछ चित्ताकर्षक स्थाई स्तंभों को आत्मधर्म में स्थान दिया है जो युवकों एवं बालकों में भी तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न कर उनको धार्मिक विकास करने में सहायक होंगे। 'आत्मधर्म' में अपने नाम के अनुसार आत्मा के स्वरूप का सच्चा ज्ञान करानेवाले, वीतरागता के पोषक, मोक्षपथ प्रदर्शक लेखों को पढ़कर अत्यंत आत्मिकशांति अनुभव होती है। मेरी हार्दिक मनोकामना है कि प्रत्येक बाल, युवा, वृद्ध आत्मधर्म का रुचिपूर्वक पठन कर अपनी आत्मा का कल्याण करें। जय महावीर।

—सनतकुमार जैन, कटनी (जबलपुर)

जिनपरमेश्वर महावीर के शासन में अनेकांतमय उत्तम वस्तुव्यवस्था

जो पर्यायमूढ़ है, वह परसमय है (पज्जयमूढा हि परसमया) यह कुन्दकुन्दस्वामी का वचन है। वह पर्यायमूढ़ जीव, जीव-पुद्गल के संयोगरूप अशुद्धपर्याय का ही आश्रय करता हुआ परसमयरूप होकर संसार में भ्रमण करता है। और धर्मीजीव अपनी अविचलितचेतना के विलासरूप शुद्ध आत्मव्यवहार को अंगीकार करके स्वसमयरूप होता हुआ मोक्ष को साधता है।

पर्यायमूढ़ को परसमय कहा, तब फिर हमें पर्याय को आत्मा में मानना ही नहीं चाहिए—क्या यह बात ठीक है?—ना; पर्याय को परसमय नहीं कहा गया, किंतु विभाव-पर्याय में ही जो मूढ़ है, उसे परसमय कहा है। वस्तु की स्वाभाविक पर्याय को (सम्यक्त्वादि को) परसमय नहीं कहते। पर्यायस्वरूप तथा गुणस्वरूप तो वस्तु स्वयं ही है। वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से जुदी नहीं है। गुणस्वरूप जो द्रव्य है, वही पर्यायरूप परिणमन करता है, और उससे वह अभिन्न है।

पर्यायमूढ़ को परसमय कहा, उसका अर्थ ऐसा मत समझो कि पर्याय को आत्मा की मानना ही नहीं। पर्यायों और गुणोंस्वरूप तो आत्मा है ही (गुणपर्ययवत् द्रव्यम्)। परंतु गुणपर्यायस्वरूप शुद्ध चैतन्यवस्तु को न जानकर, मात्र असमानजातीय देवादिपर्याय को ही जो आत्मा का स्वरूप समझ लेता है, इसप्रकार अपने को देवादिपर्यायरूप या रागादि अशुद्धभावरूप ही अनुभव करता है, वह जीव पर्याय में ही मोहित होने से (और शुद्ध द्रव्य-गुण को भूल जाने से) मूढ़-मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध गुणपर्याय के पिण्डरूप जो सत्य आत्मतत्त्व है, उसकी अनुभूति पर्यायमूढ़ जीव को नहीं होती। वह अज्ञानी अशुद्ध पर्यायरूप परिणमित होता हुआ अपने को इतना ही अनुभव करता है। यदि शुद्ध चेतनापर्याय का अनुभव करे, तब तो फिर अपने शुद्ध द्रव्य-गुण को भी अवश्य पहचान ले, क्योंकि शुद्ध चैतन्यरूप गुण-पर्यायों से अभेद वस्तु, वही आत्मा है। और वही जिनपरमेश्वर के उपदेश में कही हुई उत्तम-सम्यक्

वस्तुव्यवस्था है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यवस्था भली नहीं है–सत्य नहीं है।

जो चेतनापर्याय है, वह आत्मा की ही है, और आत्मा के द्रव्य–गुण से ही वह हुई है। उस पर्याय को आत्मा के द्रव्य–गुण से हुई न मानकर पर से हुई–ऐसा जो माने, वह भी पर्यायबुद्धि है—उसमें स्व–पर के एकत्वरूप मिथ्याबुद्धि है। मेरी पर्याय मेरे द्रव्य–गुण से ही हो रही है—ऐसा जो सम्यक् प्रकार से जानता है, वह तो द्रव्य–गुण में अभेद होकर शुद्धतारूप परिणमा है। अशुद्धपर्याय तो परसमय है; और आत्मा के स्वभावआश्रित जो शुद्धचेतनापर्याय है, वह तो अविचलित चेतनाविलासरूप आत्मव्यवहार है, धर्मी जीव उसे अंगीकार करते हैं; उसमें पर्यायबुद्धि नहीं है, अपितु स्वद्रव्य के संग से स्वसमयरूप परिणमन है, मोक्षमार्ग है।

ज्ञेय अर्थात् स्व–पर समस्त तत्त्वों। उनमें से शुद्धद्रव्य–गुण–पर्यायस्वरूप आत्मा स्वज्ञेय है; उसे जानकर श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन होता है। मैं ज्ञायकस्वभावी आत्मा हूँ; मेरा अस्तित्व मेरे ही द्रव्य–गुण–पर्यायरूप स्वज्ञेय में समाप्त होता है, अन्य में मेरा अस्तित्व नहीं है; अन्य के अस्तित्व से सर्वथा भिन्न मेरा अस्तित्व है।

अहो, जिसको अपने ऐसे स्वरूप अस्तित्व का वेदन हुआ, वह जीव अपने अनंतस्वभावों से अपने को परिपूर्ण देखता है, अतः स्व में ही तृप्त होता हुआ वह स्वसन्मुखता से अपने को ही भाता है, अपने आपसे ही सुखी हो जाता है। यह स्वज्ञेय को जानने का महान उत्तम फल है–जो कि ज्ञान से अभिन्न है। —जय महावीर

महावीर का संदेश

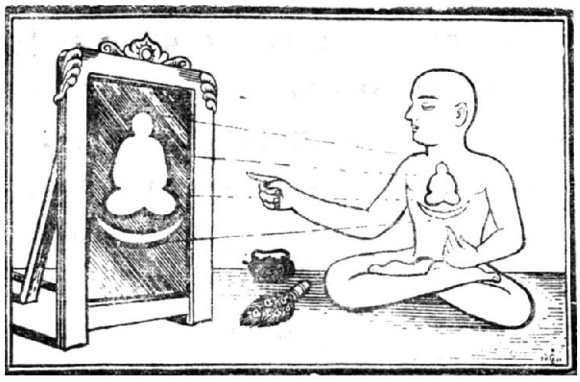

देखो आतम देव को

सर्वज्ञस्वभावी आत्मा

दिव्य ज्ञानस्वभावी आत्मा, वही जैनशासन का महान रत्न है।
जिसने उसको जान लिया उसने समस्त जिनशासन को जान लिया।

[श्री प्रवचनसार, गाथा ४९ के प्रवचन में से]

उपयोगस्वरूपी आत्मा सर्व को जाननेवाला सर्वज्ञस्वभावी है; ऐसे अपने सर्वज्ञस्वभाव को जो न जानता है, न अनुभव में लेता है, वह सर्व पदार्थ को भी नहीं जान सकता। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है—ऐसा जो स्वसंवेदन से जानता है, वह जीव सभी जीवों को भी ज्ञानस्वरूपी जानता है; ज्ञान अपेक्षा से सभी जीव साधर्मी-समानधर्मी हैं।

सर्व जीव हैं ज्ञानमय ऐसा जो समभाव।
सो सामायिक जानना, कहते जिनवरराव॥

मैं ज्ञानस्वभावी हूँ; सभी जीव मेरे जैसे ही ज्ञानस्वभावी हैं; तब फिर किसके ऊपर राग करूँ? किसके ऊपर द्वेष करूँ? सर्वत्र मुझे समभाव है।

आत्मा ज्ञानमय है, वह सामान्य-विशेष दोनों स्वरूप है। जो ज्ञान सामान्य है, वह अपने अनंत ज्ञानविशेषों में व्यापनेवाला है; ज्ञानसामान्य स्वयं ही अनंत विशेषोंरूप होकर परिणमन करता है। केवलज्ञान अनंत विशेषोंरूप महान ज्ञान है, उसमें ज्ञानस्वभाव ही व्याप्त है। यद्यपि छोटे से मति-श्रुतज्ञान में भी अनंत विशेषों हैं, परंतु केवलज्ञान जो कि सर्वोत्कृष्ट है, उसका अनंतवाँ भाग ही मति-श्रुत में है; फिर भी ज्ञानसामान्य तो दोनों में व्याप्त है। ऐसे ज्ञानस्वभाव को स्वसंवेदन में लेने से रागादि परभावों से भेदज्ञान होकर मोक्षमार्ग खुल जाता है।

समस्त पदार्थों का प्रतिभास जिसमें एकसाथ हो रहा है, तथा जो अतीन्द्रिय महा आनंदरूप है, ऐसा अद्भुत अनंत विशेषोंस्वरूप केवलज्ञान, उसमें सर्वज्ञस्वभावी महासामान्यज्ञान व्यापक है; और वह आत्मा का स्वभाव ही है।—ऐसे आत्मा को जो स्वानुभव-प्रत्यक्ष नहीं करता, उसे सर्वज्ञत्व नहीं होता।

जो जानते अरहंत के गुण-द्रव्य अरु पर्याय को।
वो जीव जाने आत्म को तस मोह होता लय अहो! (८०)

प्रवचनसार की उक्त गाथा में कहे अनुसार अरिहंतदेव के चेतनरूप द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जाने, उसको सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का ज्ञान भी अवश्य हो ही जाता है, अतः ज्ञान और राग के भेदज्ञान से मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन भी अवश्य होता है। अहो, सर्वज्ञता के सामर्थ्य का क्या कहना!-राग जिसको झेल नहीं सकता, और राग का कण भी जिसमें रह नहीं सकता, ऐसे सर्वज्ञस्वभाव को तो स्वसन्मुख अतीन्द्रियज्ञान ही झेल सकता है। अरे, सर्वज्ञ अरिहंत को अपने ज्ञान में ज्ञेय बनाना, यह कोई छोटी सी बात नहीं है, वह तो असाधारण बात है।

हे भाई! तेरी ज्ञानपर्याय में तेरे ज्ञानस्वभाव को ही व्याप्त तूं देख!
तेरी ज्ञानपर्याय में परवस्तु को या राग को व्याप्त तूं मत देख।

अहा, ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय करते ही, पर से एवं राग से भिन्न ज्ञान का अनुभव होकर भेदज्ञान होता है, और मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है।

❀ हे भाई! स्व-पर को जाननेवाला जो तेरा ज्ञान है, उस ज्ञान में किसकी व्याप्ति है?

ज्ञान के ज्ञेय होनेवाले शरीरादि बाह्य पदार्थ कहीं ज्ञान में नहीं व्यापते, वे तो ज्ञान से बाहर ही हैं। यदि अचेतन पदार्थ ज्ञान में व्याप्त होकर तन्मय हो जाये तो ज्ञान भी अचेतन हो जाये। (१)

❀ राग-द्वेषादि जो भाव ज्ञान में परज्ञेयरूप से प्रतिभासित होते हैं, वे भी ज्ञान में व्याप्त नहीं है; यदि ज्ञान में राग-द्वेष की व्याप्ति हो तो, वे राग-द्वेष छूट जाने पर ज्ञान भी छूट जाना चाहिये, राग-द्वेष के बिना ज्ञान का अस्तित्व ही न रह सके!—परंतु ऐसा नहीं है; राग-द्वेष के अभाव में भी ज्ञान तो अपने सर्वज्ञस्वरूप से विराजमान रहता है। अतः ज्ञान में राग-द्वेष की व्याप्ति नहीं है। पूजा-भक्ति में शुभराग है, विषय-कषाय में पापराग है, ज्ञान का स्वरूप इन दोनों से भिन्न है। (२)

❀ अब तीसरी बात : पूर्व की जो ज्ञानपर्याय है, वह व्यय हो जाती है, और वर्तमान ज्ञानपर्याय उत्पन्न होती है; यहाँ पूर्व की पर्याय वर्तमानपर्याय में व्याप्त नहीं है। जैसे किसी को श्रुतज्ञान का व्यय होकर केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई तो वहाँ केवलज्ञान में श्रुतज्ञान पर्याय की व्याप्ति नहीं है; अतः पर्याय के खंड-खंड की ओर देखने से पूरा सत् प्रतीत में नहीं आता। दो समय की दो पर्याय कभी एक नहीं होती। (३)

❀ तो अब शेष कौन रहा कि जो आत्मा की विशेष-ज्ञानपर्यायों में व्याप्त होता है ? तथा ये विशेष ज्ञानपर्यायों जिसका आश्रय करके प्रवर्तती है ? विशेषपर्याय के साथ ही आत्मा का ज्ञानसामान्यरूप महान स्वभाव है, वही विशेषों में व्याप्त होकर रहता है; जब देखो तब वह अपने में विद्यमान ही है। अनादि अनंत काल की जो विशेष ज्ञानपर्यायों (-जिनमें भविष्य की अनंत केवलज्ञानपर्यायों भी आ जाती हैं-) उन सबमें व्यापक होनेवाला एक ज्ञानस्वभावी आत्मा मैं हूँ—इसप्रकार धर्मी जीव स्वसंवेदनप्रत्यक्ष से अपने आत्मा को जानते हैं। अपने सामान्य तथा विशेष दोनों में उन्हें ज्ञान ही दिखता है।

❀ ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा-वही जैनशासन का महानरत्न है; जिसने उसको जान लिया, उसने समस्त जैनशासन को जान लिया। आत्मा के ज्ञानस्वभाव को जो नहीं जानता, वह न सर्वज्ञदेव को जानता है, न गुरु को जानता है और न शास्त्र के तात्पर्य को भी जानता है। जब अपने ज्ञान में अपने सर्वज्ञस्वभाव को पहचाना, तभी पंच परमेष्ठी की तथा नवतत्त्व की सच्ची पहचान हुई। ऐसे स्वभाव को जाननेवाली श्रुतज्ञानपर्याय में भी अतीन्द्रिय शांति सहित कोई परम अद्भुत गंभीरता भरी है; और अपनी उस ज्ञानपर्याय में भी धर्मी को अपना अखंड ज्ञानस्वभाव ही व्याप्त दिखता है, अन्य कोई नहीं।

❀ अरे, अपनी ज्ञानपर्याय के अंदर व्याप्त अपने ज्ञानस्वभाव को भी जो नहीं जानता, वह अपनी पर्याय से बाह्य ऐसे परद्रव्य को कैसे जानेगा ? जो अंधा अपने ही शरीर को नहीं देखता, वह अन्य को कैसे देखेगा ? सम्यग्दृष्टि तो इंद्रियातीत मति-श्रुतज्ञान के द्वारा अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को प्रत्यक्ष करते हैं, पश्चात् उसी की विशेष भावनारूप एकाग्रता के द्वारा शुद्धोपयोगी होकर, राग-द्वेष का क्षय करके केवलज्ञान प्रगट करके सर्वज्ञ हो जाते हैं। केवलज्ञान संपूर्ण ज्ञानविशेषोंरूप परिपूर्ण है; और केवलज्ञानी प्रभु ऐसे अनंत विशेषोंरूप परिणत सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को केवलज्ञान के द्वारा साक्षात्-प्रत्यक्ष जानते हैं।

❀ भगवान महावीर ऐसे सर्वज्ञ हैं—इसप्रकार सर्वज्ञस्वरूप से उनकी पहचान, यही 'सर्वज्ञ महावीर' की सच्ची पहचान है। ऐसी पहचान करनेवाला जीव अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को जानकर महावीर के मार्ग में मोक्ष की साधना करता है—और यही सच्चा निर्वाणमहोत्सव है। ॥ जय सर्वज्ञ महावीर ॥

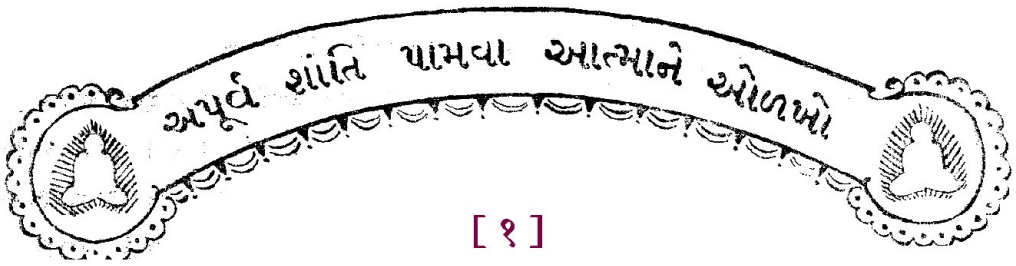

[१]

शांति के लिये आत्मा को पहिचानो

यदि दुनिया में कहीं भी वास्तविक शांति है तो वह आत्मा में ही है, और आत्मा के स्वसंवेदन द्वारा ही उसका वेदन होता है। जिनमार्गी संतों ने ऐसी अपूर्व शांति प्राप्त की है और ऐसी शांति के पिपासु भव्य जीवों से कहते हैं कि हे भव्य! तुम भी अपूर्व शांति की प्राप्ति के लिये आत्मा को पहिचानो। आत्मा को पहिचानने के लिये जिनमार्ग में अनेक शास्त्रों के द्वारा उसका स्वरूप बतलाया है। उनमें से एक शास्त्र यह 'समाधिशतक' है, जिसमें आत्मा को जानकर उसकी अपूर्व शांति प्राप्त करने का उपदेश सुगम शैली में दिया है। उसके प्रवचनों का सारांश इस लेखमाला में प्रस्तुत किया जायेगा। हे साधर्मी बंधुओं! आप अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहिचानो। [—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

प्रवचन में यह 'समाधितंत्र' का प्रारंभ होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह समाधि है। समाधि कहो या आत्मा की शांति कहो, उसकी प्राप्ति कैसे हो? ऐसी 'आत्मभावना' का वर्णन श्री पूज्यपादस्वामी ने इस समाधिशतक में किया है।

श्री पूज्यपादस्वामी परम दिगंबर संत थे; उनका दूसरा नाम देवनंदी था। लगभग १४०० वर्ष पहले वे इस भरतभूमि में विचरते थे; और जिसप्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव सीमंधर भगवान के पास विदेहक्षेत्र में गये थे, उसीप्रकार यह पूज्यपादस्वामी भी विदेहीनाथ के दर्शन से पावन हुए थे—ऐसा उल्लेख श्रवणबेलगोला के प्राचीन शिलालेखों में है। उन्होंने सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थसूत्र की टीका), तथा जैनेन्द्रव्याकरण, इष्टोपदेश आदि महान ग्रंथों की रचना की है।

उनकी अगाधबुद्धि के कारण योगियों ने उन्हें 'जिनेन्द्रबुद्धि' भी कहा है। वे परम ब्रह्मचारी तथा विशिष्ट ऋद्धियों के धारक थे। ऐसे महान आचार्य श्री पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित इस समाधितंत्र (अथवा समाधिशतक) पर प्रवचन प्रारंभ होते हैं। [वीर सं. २४८२ में इस शास्त्र पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन हुए थे, वे प्रवचन 'आत्मभावना' नामक गुजराती-पुस्तक में प्रकाशित हो चुके हैं; फिर १८ वर्षों के बाद यह प्रवचन हो रहे हैं।]

❀ प्रथम मंगलाचरण में सिद्ध-आत्मा को नमस्कार किया है। ❀

जिनके द्वारा आत्मा, आत्मारूप से जानने में आता है और पर, पररूप से जानने में आते हैं, तथा जो अक्षय-अनंत-बोधस्वरूप हैं, ऐसे सिद्ध आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

हे सिद्ध परमात्मा! आपने आत्मा को आत्मारूप जाना है और पर को पररूप जाना है, और इसप्रकार स्व-पर को जानकर आप अक्षय अनंत बोधरूप हुए हो, इसलिये ऐसे पद की प्राप्ति के लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

देखो, यह मंगलाचरण! मंगलाचरण में सिद्ध भगवान का स्मरण किया है। सिद्ध भगवान का स्वरूप जानने से अपने आत्मा का भी वास्तविक स्वरूप जानने में आता है; और सिद्धभगवान से जो भिन्न हैं, वे सब पररूप जानने में आते हैं। इसप्रकार स्व-पर का भेदज्ञान होता है।

सिद्धभगवान सदृश अपने आत्मा को पर से भिन्न जाना, उसमें समस्त शास्त्रों का ज्ञान आ जाता है। इस आत्मा का स्वभाव सिद्धभगवान के समान है, जैसा सिद्ध भगवान का आत्मा है, वैसा मेरा आत्मा है और इसके अतिरिक्त जो रागादि हैं, वे मेरा स्वभाव नहीं हैं, ऐसी पहिचान करना, वह समस्त शास्त्रों का सार है।

हे सिद्ध परमात्मा! आप केवलज्ञान की मूर्ति हो, परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप हो, और रागरहित हो, ऐसा ही मेरे आत्मा का स्वभाव है।—इसप्रकार सिद्ध भगवान को पहिचानने पर वैसा अपना आत्मस्वभाव जिसने जाना, उसने अपने आत्मा में ही सिद्ध भगवान को स्थापित कर, अंतर्मुख होकर सिद्धभगवान को नमस्कार किया है।

सिद्ध के आत्मा को जानने पर रागरहित और ज्ञानसहित ऐसा आत्मा जानने में आता है। सिद्ध का आत्मा शुद्ध है, इसलिये उसे जानने पर आत्मा को शुद्धस्वरूप ज्ञात होता है, और स्व-

पर का भेदज्ञान होता है। जिसने ऐसा भेदज्ञान किया, उसने सिद्धभगवान को परमार्थ नमस्कार किया है।

❀ जो सिद्ध में है, वह स्व; जो सिद्ध में नहीं, वह पर ❀

इसप्रकार सिद्धभगवान को जानने पर स्व-पर का भेदज्ञान होता है; इसलिये मंगलाचरण में सिद्धभगवान को नमस्कार किया है। इसप्रकार सिद्धभगवान के समान शुद्ध आत्मा का निर्णय करना, वह सम्यग्दर्शन है, वह प्रथम अपूर्व धर्म है, उसमें आत्मा की अपूर्व शांति के वेदनरूप समाधि है।

जो जीव मोक्षार्थी है... आत्मार्थी है... 'मैं कौन हूँ और मेरा हित कैसे हो ?' इसप्रकार जिसे आत्मा के हित की जिज्ञासा जागृत हुई है—ऐसे जीव को मोक्ष का उपाय बतलाने के लिये इस शास्त्र का उपदेश है। 'काम एक आत्मार्थ का-नहीं और कोई चाह' अर्थात् जिसे एक आत्मार्थी की भावना है, दूसरी कोई भावना नहीं है, आत्मा का ही अर्थी होकर श्री गुरु से हित का उपाय समझना चाहता है, वह जिज्ञासा से पूछता है कि प्रभु! इस आत्मा को शांति कैसे हो ? इस आत्मा का हित कैसे हो ? उसका उपाय मुझे दिखाओ! ऐसे आत्मार्थी जीव को आत्मा के मोक्ष का उपाय आचार्यदेव बतलाते हैं।

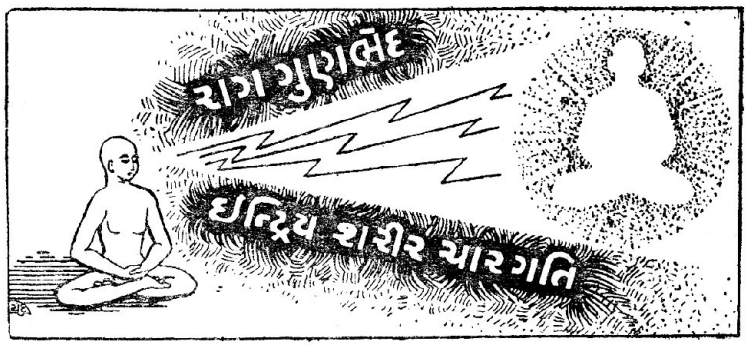

जो सिद्ध भगवान में
हो, वह स्व;
जो सिद्ध भगवान में
न हो, वह पर।

इसप्रकार सिद्धभगवान को जानने पर आत्मा का सत्यस्वरूप पहिचानने में आता है। जो मोक्ष का अभिलाषी हो, वह जीव सिद्ध भगवान को अपने ध्येयरूप रखकर इसप्रकार स्व-पर का भेदज्ञान करता है; इंद्रियाँ-शरीर-चार गति-राग या गुणभेद के विकल्प-इन सबसे पार, सहज चैतन्यरूप एक आत्मा को स्वसंवेदन से अनुभव में लेकर परम शांति का वेदन करता है। इसप्रकार इष्टरूप से सिद्ध परमात्मा को नमस्कार किया है।

यहाँ ऐसा जानना कि सिद्धभगवान को नमस्कार किया, उसमें पाँचों परमेष्ठी-भगवंतों को भी नमस्कार आ जाता है; क्योंकि आचार्य आदि को भी मोह के अभाव से एकदेश-सिद्धपना प्रगट हुआ है, आत्मा के अतीन्द्रिय ज्ञान आनंद की आंशिक प्राप्ति उन्हें भी हुई है, इसलिये वे भी इष्ट हैं। जितने सम्यक्त्वादि भाव हैं, वे सब जीव के लिये इष्ट हैं, और जो मिथ्यात्वादि परभाव हैं, वे इष्ट नहीं हैं।

सिद्धभगवान के आत्मा में जो भाव हैं, वे भाव आत्मा को शांतिकारी और हितरूप हैं, और सिद्धभगवान में से जो भाव निकल गये हैं, वे भाव आत्मा को हितरूप नहीं हैं;—ऐसा पहिचानकर अपने ज्ञानानंदस्वरूप के आदर से मोहादिभावों का नाश करना, वह कर्मबंध से छूटकर मुक्ति प्राप्त करने का उपाय है।

ज्ञानी गुरु के उपदेश से ऐसा जाना कि 'मेरे आत्मा का स्वभाव शुद्ध सिद्ध समान है, रागादि या शरीरादि मेरा स्वरूप नहीं है, मेरी पर्याय में जो विकार और दु:ख है, वह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है'—इसप्रकार श्रीगुरु के उपदेश से जानकर, अथवा पूर्व में श्रवण किया हो, उसके संस्कार से, जब जीव अपने शुद्ध स्वरूप की प्रतीत करता है, तब मिथ्यात्वादि कर्मों का उपशमादि हो जाता है, और सम्यग्दर्शन प्राप्त होकर तत्त्वों की विपरीत बुद्धि छूट जाती है, तब जीव को अपने शुद्ध आत्मस्वरूप के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी आत्मबुद्धि नहीं होती। यह शुद्ध आत्मा को आत्मारूप, विकार को विकाररूप, और पर को पररूप जानता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, तत्पश्चात् आत्मस्वरूप में स्थिर होने पर, पर से उदासीनतारूप वीतरागीचारित्र होता है—ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का उपाय है। स्व को स्व-रूप और पर को पर-रूप जानकर, पर से उदासीन होकर स्व में लीन होना, वह मोक्ष का उपाय है। सिद्धभगवान को पहिचानने पर अपने में ऐसे मोक्ष का उपाय प्रारंभ होता है, इसलिये मांगलिक में इष्टदेव के रूप में सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है।

सिद्धदशा, वह आत्मा का ध्येय है, वही आत्मा को इष्ट है। शास्त्रकर्ता श्री पूज्यपादस्वामी, एवं व्याख्याता और श्रोताजनों-सभी को ऐसा शुद्ध आत्मपद प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा है, इसलिये ऐसे शुद्धपद को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके शास्त्र का प्रारंभ किया है। जिसे जो प्रिय होता है, उसे वह नमस्कार करता है।

अहा! हमें यह एक सिद्धपद ही परम प्रिय है, इसके अतिरिक्त रागादि या संयोग कुछ भी हमें प्रिय नहीं हैं; अतः शुद्धपद को प्राप्त हुए सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके हम शुद्ध आत्मा का आदर करते हैं।

सर्वज्ञ भगवान अरिहंतदेव शरीरसहित होने पर भी आहारादि दोषों से रहित हैं। जहाँ आत्मा के अनंत आनंद का खजाना खुल गया है—वहाँ क्षुधादि दोष नहीं होते और आहारादि भी नहीं होता। अरिहंत भगवान को राग-द्वेषादि दोष नहीं हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कुदेव तो रागादि सहित हैं, क्षुधादि दोष सहित हैं, इसलिये वह आत्मा को इष्ट नहीं हैं। अतीन्द्रिय आनंदसहित ऐसा सर्वज्ञपद ही आत्मा को परम इष्ट है, अतः उसे प्राप्त हुए अरिहंतों की पहिचानपूर्वक उनका आदर करके उन्हें नमस्कार किया है।

सर्वज्ञ भगवान का उपदेश आत्मा के हित का कारण है, इसलिये वह इष्टोपदेश है। संयोग से पार होकर आत्मा के स्वभावसन्मुख होना, वही हित का उपाय है,—ऐसा भगवान का उपदेश है। अरिहंत भगवान ही सर्वज्ञ-हितोपदेशी हैं, वे ही इष्टदेव हैं।

प्रथम श्लोक में सिद्ध भगवान को तथा दूसरे श्लोक में अरिहंत भगवान को नमस्कार करके अब तीसरे श्लोक में श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि—जो केवल-सुख का अभिलाषी है, ऐसे मोक्षार्थी जीव के लिये मैं कर्ममल से विभक्त ऐसे सुंदर आत्मा का स्वरूप कहूँगा—

अहा! जो जीव आत्मा के अतीन्द्रियसुख के अभिलाषी हैं, उनके लिये मैं कर्म से भिन्न शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाता हूँ—कि जिस आत्मा को जानने पर अवश्य अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होगा। आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनंद का सागर है; संसार में अनंत काल के भव-भ्रमण

के दु:खों से थक कर जिन्हें केवल आत्मा के सुख की स्पृहा जागृत हुई है—ऐसे भव्य आत्मा के लिये यहाँ भिन्न आत्मा का स्वरूप दिखलाया जाता है।

मुझे अपने आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त करना है, और वह मुझे अवश्य प्राप्त होगा—इसप्रकार जो आत्मा के सुख को लेना चाहता है, उसे यह बात समझाता हूँ। एक आत्मा के अतीन्द्रियसुख के अतिरिक्त संसार में दूसरा कुछ जिसे प्रिय नहीं है, केवल आनंद की ही जिसे भावना है, ऐसा भव्य जीव देहादि से भिन्न आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की अपूर्व शांति को अवश्य प्राप्त करता है।

बारह अंगरूप जिनवाणी का सार यह है कि कर्म से भिन्न, संयोग से भिन्न, ज्ञान-आनंदस्वरूप आत्मा है—उसका लक्ष करना और उसमें स्थिर होना। जिसने ऐसे आत्मा का लक्ष किया, उसका जन्म सफल है।

अशुद्धता का तो जगत अनुभव कर ही रहा है, परंतु शुद्धात्मा को वह नहीं जानता; इसलिये जो सुख का अभिलाषी है, उसे तो शुद्ध आत्मा का स्वरूप ही जानना योग्य है, शुद्ध आत्मा का स्वरूप ही आराध्य है। इस समाधितंत्र में आये ५३ वीं गाथा में कहा है कि—जिन्हें मोक्ष की अभिलाषा है, ऐसे जीवों को तो ज्ञान-आनंदस्वरूप आत्मा की ही कथा करना चाहिये, दूसरे अनुभवी पुरुषों से भी वही पूछना चाहिये, उसी आत्मस्वरूप की प्राप्ति की भावना करना चाहिये, और उसी में ही तत्पर रहना चाहिये-कि जिससे अविद्यामय ऐसी अज्ञानदशा छूटकर ज्ञानमय निजपद की प्राप्ति हो। आत्मार्थी को अपने आत्मस्वरूप के अतिरिक्त दूसरी बातों में रस नहीं आता; उसे तो सर्वप्रकार से एक आत्मस्वरूप की प्राप्ति का ही उद्यम कर्तव्य है।

उसीप्रकार 'योगसार' में भी कहते हैं कि—विद्वान पुरुषों को यह एक चैतन्यस्वरूप आत्मा ही निश्चल मन से पढ़नेयोग्य है, वही ध्यान करनेयोग्य है, वही आराधना करनेयोग्य है, वही पूछनेयोग्य है, वही श्रवण करनेयोग्य है, वही अभ्यास करनेयोग्य है, वही उपार्जन करनेयोग्य है, वही जाननेयोग्य है, वही कहनेयोग्य है, वही प्रार्थना करनेयोग्य है, वही शिक्षा योग्य (विनेय) है, और वही स्पर्श करनेयोग्य (अनुभव में लेनेयोग्य) है—जिससे कि आत्मा सदैव स्थिर रहे।—इसतरह सर्वप्रकार से एक आत्मा को ही उपादेय कहा है; मुमुक्षु को उसका बहुत रस होता

है, इसलिये वह सर्वप्रकार से उसी को उपादेय करके, उसकी शांति में स्थिर होता है।

श्री पद्मनंदी मुनिराज भी कहते हैं कि जो जीव बार-बार आत्मतत्त्व का अभ्यास करते हैं, कथन करते हैं, विचार करते हैं, और सम्यक्प्रकार से भावना करते हैं, वे नव क्षायिक लब्धिसहित अक्षय और उत्कृष्ट ऐसे मोक्षसुख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं। (यह श्लोक सोनगढ़ के मानस्तंभ में भी उत्कीर्ण है।)

सर्व उपदेश का रहस्य क्या? कि शुद्ध आत्मा की सन्मुख होकर उसे जानना—यही सर्व शास्त्रों का सार है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी उपाय से सुख होने का जो कहते हैं, वे सच्चे उपदेशक नहीं, और उनका उपदेश हितोपदेश नहीं। हितोपदेश तो यह है कि तुम अपने शुद्ध आत्मा को जानकर उसके सन्मुख हो।

मेरा सुशाश्वत एक दर्शन-ज्ञानलक्षण जीव है।
अरु शेष सब संयोगलक्षण भाव मुझसे बाह्य है॥
मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञान-दर्शनमय अहो!
परमाणु मात्र न अन्य मेरा, मुझसे है बाह्य वो॥

शरीरादि से आत्मा भिन्न है, क्योंकि वह भिन्न लक्षणों द्वारा लक्षित है; जो भिन्न लक्षण द्वारा लक्षित होता है, वह भिन्न ही होता है—जिसप्रकार जल और अग्नि के लक्षण (शीत और उष्ण) भिन्न-भिन्न होने से वे प्रसिद्धरूप से भिन्न हैं। आत्मा उपयोगस्वरूप से लक्षित है और शरीरादि उससे विरुद्ध ऐसे अनुपयोग जड़स्वरूप से लक्षित हैं, इसलिये उन्हें भिन्नपना है। इसप्रकार रागादि भावों से भी ज्ञान की भिन्नता है, क्योंकि ज्ञान में शांति का वेदन है, और राग में आकुलता है, इसप्रकार दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।

मेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप है; मुझे मेरा आनंद कैसे प्राप्त हो—यही एक अभिलाषा है—ऐसी लगन जिसे लगी है—ऐसे जीव को संबोधन करके आत्मा का स्वरूप वीतराग संतों ने कहा है।

मैं तो मेरे आत्मा का आनंद ही चाहता हूँ—कर्म के संबंधरहित, इंद्रिय-विषय के संबंधरहित, केवल आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद ही मुझे चाहिये—ऐसी जिसे अभिलाषा हुई है, उसके लिये कर्मादि से भिन्न आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाते हैं—क्योंकि ऐसे आत्मा का

स्वरूप जानने से ही अतीन्द्रिय सुख प्रगट होता है; इसलिये आगम से, युक्ति से और अनुभव से ऐसे शुद्ध आत्मा का शुद्धस्वरूप जाननेयोग्य है।

अंतर में राग-द्वेषादि भाव होते हैं, वे वास्तव में ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं; क्योंकि वे राग-द्वेष तो आकुलता-लक्षणवाले हैं, वे स्व-पर को नहीं जानते, वे बहिर्मुखभाव हैं, और ज्ञानस्वभाव तो शांत अनाकुल हैं, अंतर्मुख होने पर उसका वेदन होता है, स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है; इसप्रकार भिन्न लक्षणों के द्वारा राग और ज्ञान की भिन्नता जानकर ज्ञानलक्षण द्वारा आत्मा को पहिचानो। सभी लक्षणों के द्वारा अनुमान से-युक्ति से एवं अनुभव से आत्मा को देहादि से भिन्न और रागादि से भी भिन्न ज्ञानदर्शनस्वरूप निश्चित करो, इससे अपूर्व आत्मशांति प्राप्त होगी।

मोक्षपुरी में विराजमान अतीन्द्रिय ज्ञान आनंदस्वरूप हे सिद्ध भगवंत! आपको ज्ञानदृष्टि द्वारा देखकर हमारे जैसे मोक्ष के साधक जीव आपको नमस्कार करते हैं। हमारे आत्मा में आप जैसा स्वभाव है, उसको तो स्वानुभूति द्वारा देखते हैं; और अनुभूति-सहित के ज्ञान द्वारा आपके अतीन्द्रिय स्वरूप को भी पहिचानते हैं।

भगवान महावीर का अद्भुत अनेकांतमार्ग

[जिसमें वस्तु की एक ही सत्ता में द्रव्य-गुण-पर्याय समाये हुए हैं]

(श्री प्रवचनसार, गाथा १०८ से १११)

❀ जिनमार्ग में भगवान महावीर ने सभी वस्तुओं को अनेकधर्मस्वरूप एक सत्तावाली दिखलायी है, उसी का नाम अनेकांत है।

❀ नित्य-अनित्यस्वरूप वस्तु स्वयं अपनी पर्यायरूप होती है, अतः अपनी पर्याय को वस्तु ही करती है, कोई अन्य उसको नहीं करता। वस्तु अपने स्वकीय द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप एक सत् है। ऐसे सत् का अनेकांतस्वरूप जिनप्रवचन में जैसा स्पष्ट कहा है, वैसा जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है।

❀ जैसे चक्की के दो पड प्रदेश से भिन्न हैं, वैसे कहीं वस्तु में द्रव्य और पर्याय जुदे नहीं हैं।

❀ वस्तु के द्रव्य-गुण में चक्की का दृष्टांत लागू करना हो तो इसप्रकार हो सकता है कि—जैसे चक्की वस्तु है, वह अकेले वजनरूप नहीं है, उसमें अन्य भी अनेक धर्म (स्पर्श-रस-रंग वगैरह) है; इसप्रकार चक्की एकांत वजनरूप नहीं है, एवं अकेला वजन गुण ही पूरी चक्की नहीं है; इस अपेक्षा से उस चक्की को और उसके वजन गुण को लक्षणभेद है, परंतु सत्ताभेद नहीं है। सत्ता की अपेक्षा से तो चक्की और वजन का एकत्व है, भिन्नत्व नहीं।

वैसे एक आत्मवस्तु में द्रव्यत्व-गुणत्व-पर्यायत्व एक साथ है; उसमें पूरी आत्मवस्तु किसी एक ही (ज्ञानादि) गुणरूप नहीं है, एवं ज्ञानादि कोई एक ही गुण पूरी वस्तु नहीं है; इसप्रकार से वस्तु के और उसके गुण के लक्षणभेद भले हो परंतु सत्ताभेद नहीं है; एक ही सत्ता में सब समा जाते हैं; अतः सत्ता की अपेक्षा से आत्मवस्तु को तथा उसके गुणपर्यायों को एकत्व है, भिन्नत्व नहीं। आत्मा पर से भिन्न हो सकता है (-भिन्न है ही) परंतु अपने सत् गुण-पर्यायों से आत्मा भिन्न नहीं हो सकता। अभेद अनुभूति में पर्याय गौण है, परंतु अभावरूप नहीं।

❀ देखो, यह भगवान का अनेकांतमार्ग! पर से तो आत्मा की सर्वथा भिन्नता; तथा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को कथंचित् भिन्नता एवं कथंचित् एकता।—अहो, ऐसा अद्भुत वस्तुस्वरूप सर्वज्ञदेव ने प्रसिद्ध किया है; सम्यग्दृष्टि ही उसे जानते हैं।

❀ क्रमवर्ती भाव एवं अक्रमवर्ती भाव (-पर्यायों तथा गुणों) ऐसे दोनों स्वभावों को एक साथ अपने में धारण करके वर्तना-ऐसा आत्मा का अनेकांतस्वभाव है; उसमें जो उत्पाद-व्ययरूप भाव है, वह स्वयं ध्रुवभाव नहीं है, तथा जो ध्रुवभाव है, वह स्वयं उत्पाद-व्ययरूप भाव नहीं है। तथापि वस्तुअपेक्षा से तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनोंस्वरूप एक ही अस्तित्व है (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। यह जिनशासन का महान सिद्धांत है), एक ही वस्तु एक समय में ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवभावरूप है।

❀ एक वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् में अन्य समस्त पदार्थों का सदैव सर्वथा अभाव है; परंतु ऐसा अभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव के बीच में (या द्रव्य-गुण-पर्याय के बीच में) नहीं है। द्रव्य से जुदा कोई गुण-पर्याय नहीं है; तीनोंस्वरूप एक सत् है; अलग-अलग तीन सत् नहीं है।

❀ जैसे चेतन-आत्मा तथा जड़-कर्म—ऐसी दो वस्तु, उसमें चेतन का अभाव, सो जड़ है, जड़ का अभाव, सो चेतन है। आत्मा के सद्भाव में कर्म का अभाव है, कर्म के सद्भाव में आत्मा का अभाव है।

❀ वैसे, द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु, उसमें द्रव्य का अभाव, सो पर्याय तथा पर्याय का अभाव, सो द्रव्य—ऐसा नहीं है; एक ही वस्तु में द्रव्य एवं पर्याय दोनों के सद्भाव का स्वीकार करके, फिर उनमें परस्पर अतत्-भाव का विचार हो सकता है। एक ही वस्तु में रहे हुए जो द्रव्य एवं पर्याय, उनमें जो द्रव्यत्व है, वह पर्याय नहीं है, तथा जो पर्यायत्व है, वह द्रव्यत्व नहीं; अंतर में एक-दूसरे से तत्पने का अभाव (अतद्भाव) रूप भेद होते हुए भी वस्तुरूप से उनको एकत्व है; एक ही वस्तु में दोनों का सद्भाव एकसाथ है; एक ही वस्तु दोनोंस्वरूप एकसाथ है, यही अनेकांतमार्ग है।

❀ चेतन का अभाव, सो जड़; तथा जड़ का अभाव, सो चेतन,—ऐसे उनमें तो भिन्न-भिन्न दो वस्तुत्व है।

❀ परंतु उसीप्रकार कहीं द्रव्य का अभाव, सो गुण तथा गुण का अभाव, सो द्रव्य—ऐसे उनमें भिन्न-भिन्न दो वस्तुपना नहीं है।

❀ किंतु एक ही वस्तु की सत्ता में रहकर उन्हें अन्योन्य अतत्भाव है। —जैसे कि, जो ज्ञानगुण है, वह सुखगुण नहीं है; जो सुखगुण है, वह ज्ञानगुण नहीं है; जो ज्ञानगुण है, वह श्रद्धागुण नहीं है; परंतु आत्मवस्तु तो ज्ञानगुण, सुखगुण, श्रद्धागुण—इन सभी गुणोंस्वरूप सत् है।

❀ वस्तु में से उसके किसी भी गुण-पर्याय को भिन्न नहीं किया जा सकता; अतः अभेद वस्तु की दृष्टि में तो जो ज्ञान है, वही सुख है; द्रव्य ही गुण-पर्यायरूप है, गुण-पर्याय ही द्रव्य है; इनकी भिन्न-भिन्न सत्ता नहीं है।

❀ गुण-पर्याय के बिना वस्तु का अस्तित्व नहीं रहता; वस्तु के बिना गुण-पर्याय का अस्तित्व नहीं रहता।—इसप्रकार अपने द्रव्य-गुण-पर्याय सभी को अपने में ही समाविष्ट करके धर्मीजीव अपनी सत्ता को अपने में ही परिपूर्ण देखता है।

❀ अहो, ऐसी परम गंभीर आत्मवस्तु का ज्ञान वीतरागमार्ग के संतों ने प्रसिद्ध किया है। ऐसी वस्तु का ज्ञान होते ही अपूर्व आनंद के साथ सम्यग्दर्शन भी अवश्य होता है। वस्तुस्वरूप के ऐसे अपूर्व ज्ञान से भिन्न कोई सम्यग्दर्शन नहीं होता। श्री जयसेन स्वामी ने इस ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन को 'सम्यक्त्व अधिकार' कहा है।

❀ जैसे शरीर तथा आत्मा को दो भिन्न वस्तुपना है, वैसे ज्ञान को तथा आत्मा को कहीं दो भिन्न वस्तुत्व नहीं है, उनको तो एक ही सत्ता है।

❀ शरीर तथा आत्मा को दो भिन्न वस्तुपना होने से किसी एक के अभाव में दूसरे का अभाव नहीं होता। (जैसे सिद्धभगवान, वहाँ शरीर न होने पर भी आत्मा की सत्ता है।)

❀ ज्ञान को तथा आत्मा को दो भिन्न वस्तुपना नहीं है किंतु एक ही वस्तुपना है; अतः एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होता है; जहाँ आत्मा न हो, वहाँ ज्ञान नहीं होता; जहाँ ज्ञान न हो, वहाँ आत्मा भी नहीं होता। जहाँ ज्ञान हो, वहाँ आत्मा होता है, जहाँ आत्मा हो वहाँ ज्ञान भी होता ही है;—इसप्रकार उनको अविनाभाव-एक वस्तुपना है; स्वभाव से ही प्रत्येक वस्तु अपने गुणपर्यायस्वरूप है, उनसे उसको अलग नहीं की जा सकती।

❀ द्रव्य का स्वभाव अर्थात् वस्तु का अस्तित्व, द्रव्य-गुण-पर्याय में रहा हुआ है। जब वस्तु स्वयं ही अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अस्तित्ववाली है, तब फिर उसमें अन्य के कारण से कुछ हो—यह बात कहाँ रहती है ?

❀ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सत् परिणाम यह तो द्रव्य का स्वभाव ही है, उसको द्रव्य से पृथक् नहीं किया जा सकता, एवं न उसमें अन्य का प्रवेश हो सकता। **अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अस्तित्व अपने में, तथा पर के द्रव्य-गुण-पर्याय का अस्तित्व पर में; इसप्रकार स्वरूप की स्वाधीनता का निर्णय 'हे वीरनाथ भगवान!' आपके शासन में ही होता है। यथार्थ वस्तुस्वरूप दिखाकर आपने मोक्षमार्ग खोल दिया है। आपके इस महान उपकार को याद करके हम आपके निर्वाण का ढाई हजार वर्षीय महोत्सव मना रहे हैं।**

❀ ज्ञान-सुख-आनंद, यह आत्मा के अस्तित्व में है; आत्मा के अस्तित्व से बाहर नहीं है। पर्याय आनंदरूप, गुण आनंदरूप, द्रव्य आनंदरूप—इसप्रकार धर्मी जीव अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में आनंद की व्याप्ति देखता है। आनंदस्वभाव की तरह समस्त स्वभावों द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है। इस तरह द्रव्य-गुण-पर्याय की अपने में एकता जाननेवाला धर्मी जीव, पर के अस्तित्व से अत्यंत भिन्न ऐसे अपने अस्तित्व को अपने ही में समाप्त देखता है; ऐसी अनुभूति भगवान सर्वज्ञदेव के अनेकांतमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती।

❀ हे भाई! तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय के अस्तित्व से बाह्य कहीं तेरा आनंद ढूँढ़ेगा तो तेरे को वह कभी नहीं मिलेगा। तेरा ज्ञान-तेरा आनंद-तेरा सुख-तेरा धर्म, ये सब तेरे अस्तित्व में समाये हुए हैं। द्रव्य अपने गुण-पर्यायों से भिन्न नहीं रहता, और गुण-पर्यायों द्रव्य से भिन्न नहीं रहते;—ये सब स्वयमेव एक सत्तारूप है। एक ही सत्ता बहुत रूपों को (द्रव्य-गुण-पर्याय को, उत्पाद-व्यय-ध्रुवता वगैरह को) एकसाथ अपने अस्तित्व में धारण करती है।—वस्तु का अस्तित्व जब देखो तब अपने में ही परिपूर्ण है-यह जैनशासन की अलौकिक बात है। ऐसे जिनप्रवचन को जो समझे, वह अपने स्वरूप-अस्तित्व में ही संतुष्ट रहता हुआ, और अन्यरूप नहीं वर्तता हुआ, स्वभाव से ही ज्ञान-

आनंदरूप परिणमन करता है। अहो, ज्ञान-आनंद का ऐसा मार्ग दिखलाकर वीतरागी संतों ने महान उपकार किया है।

❀ हे जीव! तेरा स्वभाव कैसा है! और तेरे अस्तित्व में क्या-क्या भरा पड़ा है—यह देख तो सही! तेरा उत्पाद-व्यय-ध्रुवपरिणाम तेरे में ही है, तेरे समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय तेरे में ही है; तेरा ज्ञान-आनंद वगैरह अनंत स्वभाव तेरे में ही भरा है। तेरे पूरे अस्तित्व को तेरे में ही देखकर तुझे महान आनंद होगा, और तेरे से बाहर कहीं ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा। स्वयं अपने में ही तुझे श्रद्धा-ज्ञान-आनंद का अनुभव होगा। महावीर भगवान के जिनशासन की यह विशेषता है कि वह अपनी पूर्णता अपने में ही दिखाता है, और इसप्रकार अंतर्मुख अभेदपरिणति से जीव को स्वसमय में स्थिर करता है।

❀ हे भव्य! तेरे आत्मा को तू ऐसे मोक्षमार्ग में जोड़! और अन्य भावों का ममत्व छोड़! स्वद्रव्य के आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग, उसी में आत्मा को जोड़,—ऐसी सूत्र की अनुमति है।

वीरनिर्वाण महोत्सव में वीरबालकों का उत्साह

'अहो, हमारे जीवन में हमारे भगवान का ढाई हजार वर्षीय निर्वाण महोत्सव मनाने का यह महान सुअवसर हमें मिला है'—ऐसे उल्लासभाव के साथ जैनसमाज का बच्चा-बच्चा निर्वाणमहोत्सव में जो सुंदर सहयोग दे रहे हैं, उसे देखकर हमें हर्ष होता है। उत्सव के निमित्त अनेक बालकों ने ढाई हजार पैसे (२५००) आत्मधर्म-बालविभाग की योजना में भेजे हैं, उनके नाम यहाँ दिये जाते हैं, अब भी रकम आना चालू है।

२५२ लीलावती शांतिलाल, अमलनेर
२५३ चंपकलाल मंगलदास, वडली
२५४ मंगलदास गरीधरलाल, गोधरा
२५५ मुकेशकुमार मणिलाल महेता, मद्रास
२५६ विपिनकुमार शांतिलाल, मद्रास
२५७ प्रभाबेन जयंतिलाल कामदार, मद्रास
२५८ कुमारी मोनाबेन प्रवीणचंद्र, बम्बई
२५९ नीपाबेन प्रवीणचंद्र जैन, बम्बई

२६० दीपककुमार मनसुखलाल देसाई, सोनगढ़
२६१ सज्जन जैन महेता, इंदौर,
२६२ नीलाबेन वर्द्धमान जैन, लातुर
२६३ हरीशचंद्र जेठालाल जैन, मोरवी
२६४ विजय जैन, बम्बई
२६५ राजेन्द्र जैन, बम्बई
२६६ हर्षाबेन, बम्बई
२६७ विपिन भाईलाल दोशी, माटुंगा, ''
२६८ गौतम भाईलाल दोशी, माटुंगा, ''
२६९ उदय भाईलाल दोशी, माटुंगा, ''
२७० नवलचंद छगनलाल जैन, जामनगर
२७१ गंगाबेन रतिलाल जैन, सोनगढ़
२७२ ब्र. भद्राबेन शांतिलाल जैन, सोनगढ़
२७३ आर.डी. देसाई, बम्बई
२७४ कमलाबेन एन. पारेख, बम्बई
२७५ सुरेश रतिलाल शाह, जोरावरनगर
२७६ भूपेन्द्रकुमार अमुलख जैन, जोरावरनगर
२७७ अतुल ए. गांधी, सोनगढ़
२७८ इलाकुमारी नंवलाल, सुरेन्द्रनगर
२७९ नीलाबेन प्रवीणचंद्र, सुरेन्द्रनगर
२८० कुमारी ज्योतिबेन शांतिलाल, गुलाबगंज
२८१ बेटीलालजी (गोविंददासजी), खंडेरी
२८२ प्रवीणचंद्र रतिलाल जैन, मोरवी
२८३ हितेन मोटाणी, बम्बई
२८४ राजेन्द्र शांतिलाल शाह, राजकोट
२८५ चेतन, अतुल, विनेश दोशी, बम्बई
२८६ दर्शनाबेन कोठारी, राजकोट
२८७ देवांश कोठारी, राजकोट
२८८ शांतिलाल बापालाल गांधी, बम्बई
२८९ मंजुलाकुमारी तखतराजजी सेठ, कलकत्ता
२९० विनयकुमार बी. गांधी, अहमदाबाद
२९१ शांतिलाल खीमचंद, जांबुआ
२९२ छोटालाल रायचंद गांधी, लवारी
२९३ चंचलबेन शाह, बम्बई
२९४ भद्रेश रमणीकलाल दोशी, घाटकोपर, बम्बई
२९५ स्मीताबेन रमणीकलाल दोशी, ''
२९६ दयाबेन हिम्मतलाल, बेंगलौर
२९७ भरतेश चंद्रकांत महेता, चेम्बुर, बम्बई
२९८ शैलाबेन चंद्रकांत महेता, चेम्बुर, ''
२९९ शैलाबेन रमेशचंद्र, घाटकोपर, ''
३०० मुक्ताबे हिम्मतलाल डगली, वींछिया
३०१ चेतनाबेन जयकर, थानगढ़
३०२ प्रशांत जयकर, थानगढ़
३०३ गोसलीया ज्योतिबेन वर्द्धमान, गढडा
३०४ दफतरी नौतमलाल कु०, राजकोट
३०५ मनोजकुमार मगनलाल, अहमदाबाद
३०६ पारुलबेन भोगीलाल खंधार, बम्बई
३०७ मंजुलाबेन मनहरलाल पारेख, सोनगढ़
३०८ मीनाबेन मनहरलाल पारेख, सोनगढ़
३०९ किरणकुमार मनहरलाल पारेख, ''
३१० धनलक्ष्मी गुणवंतराय, बम्बई

३११ कंचनबेन भगवानदास, नरोडा
३१२ खीमचंद सुखलाल कामदार, बोटाद
३१३ रश्मीबेन —
३१४ श्रुतकुमार कुमुदचंद शाह, बम्बई
३१५ कल्पनाबेन भोगीलाल, बम्बई
३१६ योगेशभाई भोगीलाल, बम्बई
३१७ दक्षाबेन भोगीलाल, बम्बई
३१८ सुनीलभाई भोगीलाल, बम्बई
३१९ चेतनाबेन प्रेमजीभाई, मलाड, बम्बई
३२० अतुलभाई प्रेमजीभाई, मलाड, बम्बई
३२१ दर्शनाबेन प्रेमजीभाई, मलाड, बम्बई
३२२ हिम्मतलाल लालचंद, चीतल
३२३ शांतिलाल परमाणंद, मियागाम
३२४ इच्छाबेन मणीलाल, बम्बई
३२५ पुष्पाबेन लाभुभाई, बम्बई
३२६ सुरेश अमृतलाल, लींबडी
३२७ माणेकचंद कपूरचंद, इंदौर
३२८ ममता क्लोथ स्टोर्स, इंदौर
३२९ उषाबेन रमणीकलाल भायाणी, —
३३० भरतभाई रमणीकलाल भायाणी, —
३३१ भुपेन्द्र रमणीकलाल भायाणी, —
३३२ कमलेश रमणीकलाल भायाणी, —
३३३ धीरुभाई टी. झाला, बेंगलोर
३३४ राजेशकुमार मनसुखलाल भायाणी, —
३३५ पन्नालालजी जैन, फिरोजाबाद
३३६ प्रकाश जैन, अलवर
३३७ नवलचंद जगजीवनदास, सोनगढ़
३३८ हरीश जेठालाल दोशी, सिकंदराबाद
३३९ हिमांश जेठालाल दोशी, सिकंदराबाद
३४० हीनाबेन हसमुखलाल, सिकंदराबाद
३४१ जयेशभाई हसमुखलाल, सिकंदराबाद
३४२ मंजुलाबेन रमणीकलाल भायाणी —
३४३ भूपेन्द्र, मुकेश, संजीव, बरोडा
३४४ बाबुभाई गोपालदास, अहमदाबाद
३४५ कोकिलाबेन पोपटलाल, लींबडी
३४६ खेतशी वीरपाल, —
३४७ राहुल जीतेशकुमार, देहगाम
३४८ लाभुबेन (कानातलाववाला), —
३४९ मदनलाल पुष्पेन्द्रकुमार जैन,—
३५० सुरेशचंद जैन, बडौत
३५१ जयेशकुमार तथा मालतीबेन वी. जैन, अहमदाबाद
३५२ भंवरलाल भेरुलाल जैन, बम्बई
३५३ भंवरलाल भेरुलाल जैन (२),बम्बई
३५४ कमलाबेन भंवरलाल जैन, बम्बई
३५५ कमलाबेन भंवरलाल जैन (२), ''
३५६ नीरंजनाबेन भंवरलाल जैन, बम्बई
३५७ राकेशकुमार भंवरलाल जैन, बम्बई
३५८ मुकेशकुमार भंवरलाल जैन, बम्बई
३५९ सोनल-रुपलबेन रसिकलाल जैन, ''
३६० हेमांशुकुमार रसिकलाल जैन, बम्बई
३६१ रोहि-रश्मि चंदुलाल जैन, बम्बई
३६२ नीशाबेन-चंद्रिकाबेन सवाईलाल, ''
३६३ श्री नेमिकुमार जैन, सोनगढ़

३६४ ब्र. हरिलाल जैन, सोनगढ़
३६५ छाया–कल्पेश–नेहाकुमारी जैन,मोरबी
३६६ प्रेमचंद (खेमराज दुलीचंद) जैन, खेरागढ़
३६७ हितेन्द्रकुमार भरतकुमार, —
३६८ भद्रेशभाई के. भायाणी, —
३६९ चेतनाबेन के. भायाणी, —
३७० खेमराज चौथमल्ल लोढा, मंदसौर
३७१ भारतीबेन दिनेशचंद्र, सूरत
३७२ अनीलचंद्र दिनेशचंद्र, सूरत
३७३ केतनभाई दिनेशचंद्र, सूरत
३७४ धर्मेशभाई शीरीषभाई, सूरत
३७५ फाल्गुन शीरीषभाई, सूरत
३७६ पंकजभाई नारणदास दाणी, सूरत
३७७ कुमारी सुलोचना जैन, —
३७८ सोनल अनंतराय जैन, जलगाँव
३७९ सुधेशकुमार अनंतराय जैन, जलगाँव
३८० कांताबेन केवलचंद, बम्बई
३८१ सरस्वतीबेन, बम्बई
३८२ अनपूर्णाबेन तथा प्रज्ञाबेन, बम्बई
३८३ शिखरचंद कैलाशचंद्र जैन, जबलपुर
३८४ हीराचंद त्रिभोवनदास दामाणी, सोनगढ़
३८५ हेमंतकुमार चीमनलाल जैन, मोडासा
३८६ चंदनबेन चीमनलाल जैन, मोडासा
३८७ मृदुलाबेन चीमनलाल जैन, मोडासा
३८८ डोलरकुमार चीमनलाल जैन, मोडासा
३८९ अरविंदकुमार जेठालाल, सिकंदराबाद
३९० अजयकुमार हसमुखलाल, सिकंदराबाद
३९१ सतीशकुमार कांतीलाल, वीरमगाँव
३९२ राजेशकुमार नटवरलाल, बोरीवली, बम्बई
३९३ रुपलबेन धीमंतकुमार जैन, कांदीवली
३९४ सोनलबेन धीमंतकुमार जैन, कांदीवली
३९५ मीनेशकुमार धीमंतकुमार जैन, कांदीवली
३९६ स्व. रमणीकलाल भूरालाल जैन, सूरत
३९७ प्रेमचंद नेमचंद जैन, दिल्ली
३९८ रूपाबेन अनूपचंद जैन, अमरेली
३९९ हंसाबेन दिनेशकुमार जैन, अमेरिका
४०० किरणबेन बृजलाल जैन, माटुंगा
४०१ भीखुभाई सुरेशचंद्र जैन, बम्बई
४०२ निलेशकुमार भीखुभाई, बम्बई
४०३ रमणीकलाल जैन, बम्बई
४०४ इंदुबेन रसीकलाल जैन, बम्बई
४०५ प्रभुदयाल जैन, —

[दिनांक १५–१२–७४ तक; शेष अगले अंक में]

भाई-बहन की धर्मचर्चा

एक जैन सद्गृहस्थ के घर में सभी सदस्य उत्तम संस्कारी थे; इनमें आनंदकुमार-भाई तथा धर्मवती-बहन, वे दोनों बाहर की विकथा में या सिनेमा-रेडियो वगैरह में रस न ले करके प्रतिदिन रात्रि के समय तत्त्वचर्चा करते थे, या महापुरुषों की धर्मकथा के द्वारा आनंद प्राप्त करते थे। वे भाई-बहन कैसी अच्छी चर्चा करते थे, उसका नमूना यहाँ दिया है। आप भी अपने भाई-बहन के साथ में धर्मचर्चा करते ही होंगे! यदि न करते हो तो अब से जरूर करना। आज ही उसका मंगल प्रारंभ कर दो; और फिर आपने कौनसी चर्चा की-वह हमें भी लिखना।

— जय महावीर' (सं.)

धर्मवती बहन कहती है— भैया! अनंतकाल के संसारभ्रमण में हमें ऐसा दुर्लभ मनुष्य अवतार मिला है; तो अब इस जीवन में हमें क्या करना चाहिये?

आनंदकुमार भाई कहता है— बहन! मनुष्य जीवन पाकर हमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करना चाहिये।

(बहन)— भैया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय की आराधना कैसे हो?

(भाई)— बहन! इन रत्नत्रय के मुख्य आराधक तो मुनिराज है; वे चैतन्यस्वरूप में लीन होकर रत्नत्रय की आराधना करते हैं।

(बहन)— भैयाजी! आपने कहा कि रत्नत्रय के 'मुख्य' आराधक मुनिराज है, तो क्या गृहस्थों के भी रत्नत्रय की आराधना हो सकती है?

(भाई)— हाँ, बहन! रत्नत्रय के एक अंश की आराधना गृहस्थ के भी हो सकती है।

(बहन)— क्या हम जैसे छोटे बालक भी रत्नत्रय की आराधना कर सकते हैं?

(भाई)— हाँ, खुशी से कर सकते हैं; परंतु ये रत्नत्रय का मूल बीज सम्यग्दर्शन है, अतः प्रथम उसकी आराधना करना चाहिये।

(बहन)—अहा, सम्यग्दर्शन की तो अपार प्रशंसा सुनी है। भाई! उस सम्यग्दर्शन की आराधना किसप्रकार से होती है?

(भाई)—सुन, बहन! आत्मा की पूरी लगन से, ज्ञानी-अनुभवी के पास से उसकी पक्की समझ करना चाहिए, और फिर अंतर्मुख होकर उसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है।

(बहन)—ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा का कैसा अनुभव होता है?

(भाई)—अहा, उसका क्या कहना? सिद्धभगवान जैसे अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव उसमें होता है।

(बहन)—भैया, मोक्षशास्त्र में कहा है कि 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' सो यह श्रद्धा व्यवहार है कि निश्चय?

(भाई)—यह निश्चय श्रद्धा है, क्योंकि वहाँ पर मोक्षमार्ग दिखाना है; और सत्य मोक्षार्ग तो निश्चय रत्नत्रय ही है।

(बहन)—तत्त्व कितने हैं?

(भाई)—तत्त्व नव हैं और इन तत्त्वों की श्रद्धा, सो सम्यग्दर्शन है।

(बहन)—उन तत्त्वों के नाम बताईये।

(भाई)—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध व मोक्ष।

(बहन)—इन तत्त्वों में से उपादेय तत्त्व कौन-कौन है?

(भाई)—नव तत्त्वों में से शुद्ध जीवतत्त्व उपादेय है, तथा संवर-निर्जरा आंशिक उपादेय है, मोक्षतत्त्व सर्वथा उपादेय है।

(बहन)—शेष तत्त्व कौन-कौन रहे?

(भाई)—अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव तथा बन्ध ये पाँच तत्त्व शेष रहें, वे पाँचों तत्त्व हेय है।

(बहन)—वाह, आज सम्यग्दर्शन की तथा हेय-उपादेय तत्त्व की बहुत अच्छी चर्चा हुई; इसका गहरा विचार करके सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना चाहिये।

(भाई)—हाँ बहन! सभी को यही करने का है; जीवन में तूं यही प्रयत्न करना, इससे तेरा जीवन सफल व सुखरूप होगा।

दूसरे हाथी की कहानी [जो हाथी से बन गया भगवान]

'एक हाथी की कहानी' गतांक में आपने पढ़ी... आपको वह बहुत अच्छी लगी। अब यह दूसरे हाथी की कहानी है, वह तो आपको उससे भी अधिक प्रिय लगेगी, क्योंकि प्रथम के वह त्रिलोकमंडन हाथी का जीव तो स्वर्ग में गया है, जबकि यह दूसरे हाथी का जीव तो तीर्थंकर होकर मोक्ष में गया है।

वाह भाई वाह! हाथी का जीव किसप्रकार मोक्ष पाया?—यह जानकर हमें आनंद होगा... और हम भी उस गजराज की तरह मोक्ष का मार्ग प्रकट करेंगे। अतः जल्दी उसकी कथा कहो!

सुनो! एक था दूसरा हाथी। उसका नाम वज्रघोष।

उस हाथी का जीव पूर्वभव में पोदनपुर के राजा का मंत्री था। उसका नाम मरुभूति। उसके बड़े भाई का नाम कमठ; वह कमठ बहुत क्रोधी था।

एकबार क्रोधवश पापी कमठ ने अपने छोटे भाई को एक बड़े पत्थर से मार डाला। वह छोटा भाई मरुभूति दुःख से मरकर हाथी हुआ; और उसका भाई क्रोधी कमठ मरकर कुक्कट नाम का भयंकर जहरीला सर्प हुआ।

वह हाथी सम्मेदशिखरजी के निकट के एक मनोहर वन में रहता है। अहा, थोड़े ही भव के बाद जिस सम्मेदशिखर से वह मोक्ष जानेवाला है, उसके ही निकट के वन में अभी वह हाथी पशु होकर भटक रहा है। अब तक उसने आत्मज्ञान नहीं पाया, परंतु अब उसकी तैयारी है। हाथी बहुत बड़ा है, और वन में सरोवर के किनारे पर रहकर जंगल का राज करता है। अरेरे! मोक्ष का राजा अभी अपने को भूलकर जंगल का राजा बन बैठा है।

अब वहाँ पोदनपुर में क्या हुआ? अपने मंत्री को उसके बड़े भाई ने मार दिया, यह जानकर राजा अरविन्द को वैराग्य हुआ। एकबार आकाश के बादलों में सुंदर जिनमंदिर का दृश्य बन गया, उस जिनमंदिर की अद्भुत शोभा देखकर राजा को आश्चर्य हुआ और वैसा ही मंदिर बनाने की भावना भाता था कि इतने में तो वे बादल विलीन हो गये और वह मंदिर भी

अलोप हो गया। संसार की ऐसी क्षणभंगुरता को देखकर राजा अरविन्द ने राजपाट छोड़ करके जिनदीक्षा ले ली, और मुनि होकर वन में विचरने लगा।

एक बार अरविन्द मुनिराज बड़े संघसहित सम्मेदशिखरजी तीर्थ की यात्रा करने जा रहे थे और वन में पड़ाव किया था; उस समय एक अद्भुत घटना बनी। क्या हुआ ? यह सुनो—

श्री मुनिराज जिस वन में संघसहित विराजमान है, हाथी भी उसी वन में रहता है। इस निर्जनवन में इतने मनुष्यों की भीड़ एवं इतना बड़ा कोलाहल हाथी ने पहलीबार देखा... उसको भय हुआ कि ये सब लोग मेरे को पकड़ने को आये होंगे ! इसप्रकार वह हाथी घबड़ाया, गुस्से में आ गया, और चिंघाड़ता हुआ यहाँ-वहाँ दौड़ने लगा। संघ में अचानक खलबली मच गयी; सभी लोग भयभीत होकर यहाँ-वहाँ भागने लगे, हाथी तो जोर-शोर से गर्जना करता हुआ उनके पीछे दौड़ने लगा; और जो भी हाथ आया उसको सूंड में पकड़कर दूर उछालने लगा।

अरेरे ! देखो तो सही, भविष्य का भगवान अभी पागल होकर भटक रहा है। अभी तिर्यंच पर्याय में भटक रहा यही जीव थोड़े समय बाद तीर्थंकर होनेवाला है। देखो, जीव के परिणाम की विचित्रता !

पागल हाथी से भयभीत होकर के लोग अरविन्द मुनिराज की शरण में गये। मुनिराज ध्यान में निमग्न थे। हाथी चिंघाड़ता हुआ मुनिराज की ओर दौड़ा।

लोगों को भय लगा कि अरे, यह हाथी न जाने मुनिराज का क्या कर डालेगा !

मुनिराज तो शांत होकर बैठे हैं। उनको देखते ही सूंड ऊँची करके हाथी उनकी तरफ दौड़ा....

किंतु..... क्या हुआ ? यह धैर्य से पढ़ो—लोग मुनि को बचाने के लिये दौड़धाम करने लगे... परंतु उस अरविन्द मुनिराज की छाती में एक उत्तम चिह्न था; वह चिह्न देखते ही हाथी एकदम सोच में पड़ गया... उसको ऐसा लगा कि अरे ! इनको तो मैंने कहीं देखा है... यह मेरे

कोई जान-पहिचानवाले तथा हितस्वी हो, ऐसा लगता है;—ऐसे विचार में हाथी तो एकदम शांत होकर खड़ा रह गया; उसका पागलपन दूर हो गया; वह मुनिराज के सामने सूँड झुकाकर बैठ गया।

लोग तो आश्चर्यचकित हो गये कि अरे, मुनिराज की समीप आते ही यह पागल हाथी अचानक शांत कैसे हो गया! यह दृश्य देखते ही चारों ओर से लोग दौड़कर मुनिराज के पास पहुँच गये। मुनिराज ने अवधिज्ञान के द्वारा हाथी के पूर्व भव को जान लिया; और अचानक शांत हुए हाथी को संबोधन करके कहने लगे—अरे बुद्धिमान! अरे मरुभूति! यह पागलपन तुझे शोभा नहीं देता। यह पशुता, यह हिंसा, इसका तू त्याग कर! मैं अरविन्द राजा हूँ और मुनि हुआ हूँ; तू तेरे पूर्वभव में मेरा मंत्री था और तेरे भाई ने तेरे को मार डाला। आत्मा का मान भूलकर आर्तध्यान से तू यह पशु पर्याय में उत्पन्न हुआ... अब तो तू चेत... और आत्मा की पहिचानकर। आत्मा के अज्ञान से चारगति का बहुत दुःख तूने भोगा; अब तो शांत होकर आत्मा को पहचान!

मुनिराज के अमृतमय वचन सुनकर हाथी को अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसको अपने पूर्वभव का (जातिस्मरण) ज्ञान हो गया, अपने दुष्कर्म के लिये उसको महान पश्चाताप होने लगा, उसकी आँखों में से अश्रुओं की धारा बहने लगी, विनय से मुनिराज के चरणों में मस्तक झुकाकर उनके सामने देखने लगा... उसके ज्ञान का अपने आप इतना विकास हो गया कि वह मनुष्य की भाषा समझने लगा और मुनिराज की वाणी श्रवण करने की उसको जिज्ञासा जागृत हुई।

मुनिराज ने देखा कि इस हाथी के परिणाम अभी विशुद्ध हुए हैं और इसको आत्मस्वरूप समझने की तीव्र जिज्ञासा प्रगट हुई है... तथा यह एक होनहार तीर्थंकर है... इसलिये अत्यंत प्रेम से—वात्सल्यता से उस हाथी को उपदेश देने लगे। श्री मुनिराज कह रहे हैं—अरे हाथी! तू शांत हो। यह पशुपर्याय तेरा स्वरूप नहीं है, तू तो देह से भिन्न चैतन्यमय आत्मा है। तू हाथी नहीं है, तू तो आत्मा है। आत्मा के ज्ञान से रहित अनेक भवों में अनेक दुःख तूने भोगे, अब तो आत्मा के स्वरूप को पहिचानकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। सम्यग्दर्शन ही जीव को महान सुखकारी है। क्रोध तथा ज्ञान का एकरूप से अनुभव करने का तू छोड़। तू प्रसन्न

हो... सावधान हो... तथा सदा उपयोगरूप स्वद्रव्य ही मेरा है, ऐसा अनुभव कर। इससे तुझे अत्यंत आनंद होगा। तू निकटभव्य हो, थोड़े ही भव में तू भगवान होनेवाला हो; और इस भरतक्षेत्र में जो तेइसवें पारसनाथ तीर्थंकर होगा वह तू ही हो। अतः आज ही आत्मा का अनुभव कर!

हाथी अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रवण करता है। अपने भगवान होने की बात सुनकर उसका आत्मा आनंद से प्रमुदित हो उठा और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। मुनिराज के श्रीमुख से आत्मा के स्वरूप की तथा सम्यग्दर्शन की बात का श्रवण करते हुए उसे अत्यंत हर्षोल्लास हुआ, उसके परिणामों में अत्यंत निर्मलता होने लगी... उसके अंतर में सम्यग्दर्शन की तैयारी होने लगी।

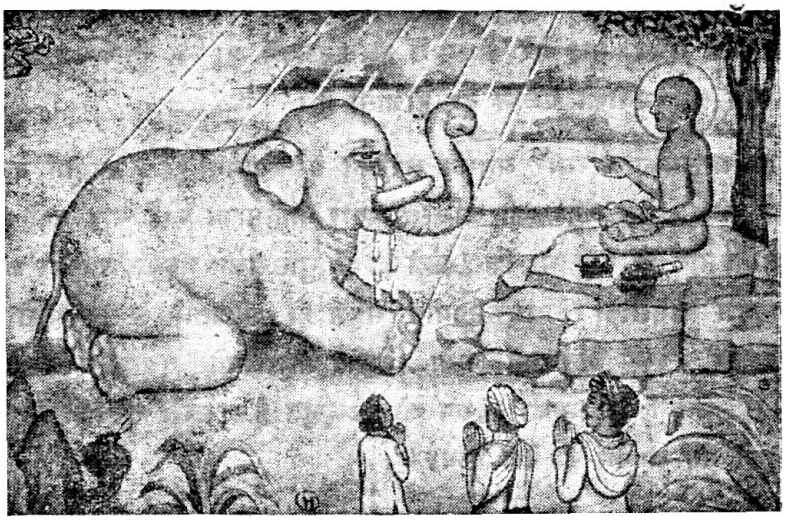

मुनिराज हाथी को आत्मा का परम शुद्धस्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि हे जीव! तेरा आत्मा अनंत गुणरत्नों का भंडार है.... यह हाथी का विशाल शरीर, वह तो पुद्गलों का है, वह तू नहीं है, तू तो ज्ञानस्वरूप है। तेरे ज्ञानस्वरूप में पाप तो नहीं है किंतु पुण्य का शुभराग भी नहीं है; तू तो वीतरागी आनंदमय है।—ऐसे अपने स्वरूप का तू अनुभव कर... उसकी श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर।

जगत में सम्यग्दर्शन ही जीव के लिये साररूप है; यही मोक्ष का सोपान है, यही धर्म की नींव है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी धर्मक्रिया नहीं हो सकती; सम्यग्दर्शन से रहित सभी

क्रियाएँ व्यर्थ हैं। मिथ्यात्व के दावानल में संसार के जीव जल रहे हैं, उसमें से यह सम्यग्दर्शन ही बचानेवाला है। वीतरागी-सर्वज्ञ, अरहंतदेव, रत्नत्रयधारक दिगम्बर मुनिराज-गुरु तथा हिंसा से रहित वीतरागभावरूप धर्म—ऐसे देव-गुरु-धर्म की पहिचान करके तू श्रद्धा कर, अत्यंत भक्ति से उसका आदर कर और उन्होंने आत्मा का जैसा स्वरूप बतलाया है, वैसा तू पहिचान,.... उसकी श्रद्धा कर; ऐसे सम्यग्दर्शन से तेरा परम कल्याण होगा।

इस तरह अनेक प्रकार से मुनिराज ने सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया.... उसका श्रवण करके हाथी आत्मा का विचार करने लगा कि अरे! मैं तो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ; और मैं ही भगवान होनेवाला हूँ। इसप्रकार क्रोध से भिन्न अपने अत्यंत शांत चैतन्यस्वरूप को विचार में लेकर उस हाथी के परिणाम अंतर्मुख हुए... और अंतर में अपने आत्मा का सच्चा स्वरूप देखकर उसको सम्यग्दर्शन हुआ... महान अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ.... उसको ऐसा लगा कि—'अहा, अमृत का समुद्र मेरे आत्मा में हिलोरें ले रहा है..... परभावों से भिन्न सच्चा सुख मेरे आत्मा में ही अनुभव में आ रहा है, क्षणमात्र के ऐसे आनंद का अनुभव होने से अनंतभवों की थकान दूर हो जाती है।'

ऐसे आत्मा का बारबार अनुभव करने की उसे भावना हुई... उपयोग बारबार अंतर में एकाग्र होने लगा। ऐसे अनुभव की अचिंत्य अपार महिमा का कोई पार नहीं था। बारबार उसको ऐसा प्रमोद हो रहा था कि 'अहो! इन मुनिराज ने अद्भुत उपकार करके आत्मा का सत्यस्वरूप मुझे समझाया। आत्मउपयोग सहज ही शीघ्रता से स्वस्वरूप को और झुकने से सहज निर्विकल्प स्वरूप अनुभव में आया... चैतन्यप्रभु अपने 'एकत्व' में आकर निजानंद में डोलने लगा... वाह! आत्मा का स्वरूप कोई अद्भुत है। परम तत्त्व को प्राप्त करके, मेरे चैतन्य प्रभु को मैंने अपने में ही देख लिया।'

'अहा, ऐसी अनुभूति मुझे पहली बार ही हुई; मैंने स्वयं को 'शांति का पिण्ड' देखा। कोई परम अचिंत्य अद्भुत वह दर्शन और संवेदन था। वाह! आत्मपरिणाम की कोई अद्भुत आश्चर्यकारी आनंदधारा उल्लसित हुई। शांति के पिंड का स्पर्श हुआ-वेदन हुआ। थोड़े समय का यह वेदन था, फिर भी मानों सुदीर्घ काल तक संसार से दूर-दूर निजस्वरूप में रहकर बाहर आया हो—ऐसा अनुभूति के बाद में उसे लग रहा था। शांति का पिंड स्वयं आत्मा, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उस समय नहीं था।'

— इसप्रकार सम्यग्दर्शन होने के बाद हाथी के आनंद का कोई पार न रहा। उसकी आनंदमयी चेष्टाएँ एवं आत्मशांति को देखकर मुनिराज भी समझ गये कि इस हाथी के जीव ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है; भव को छेद करके यह मोक्ष के मार्ग में आया है। मुनिराज ने हाथ उठाकर हाथी को आशीर्वाद दिया। संघ के हजारों मानव यह दृश्य देखकर अति प्रसन्न हुए। एक क्षण में यह क्या हो गया—इसको सभी आश्चर्य से देख रहे थे।

आत्मा का ज्ञान होने के बाद हाथी तो अत्यंत भक्तिभाव से मुनिराज का उपकार मानने लगा... अरे, पूर्व में आत्मभान के बिना आर्तध्यान करने से मैं पशु-पर्याय को प्राप्त हुआ, किंतु अब इन मुनिराज के प्रताप से मुझे आत्मभान हो गया है; इस आत्मा के ध्यान के द्वारा अब मैं परमात्मा हो जाऊँगा।—ऐसा विचारकर वह हाथी सूंड उठाकर मुनिराज को नमस्कार करने लगा।

[देखो तो सही, बंधुओ! अपना जैनधर्म कितना महान है कि उसके सेवन से पशु भी आत्मज्ञान प्राप्त करके परमात्मा हो सकते हैं। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा होने की शक्ति विद्यमान है—ऐसा अपना जैनधर्म बतलाता है। वाह... जैनधर्म... वाह!]

मुनिराज के निकट सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर, हाथी के साथ-साथ अन्य अनेक जीवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। जिसप्रकार तीर्थंकर अकेले मोक्ष में नहीं जाते, अन्य अनेक जीव भी उनके साथ मोक्ष में जाते हैं, उसीप्रकार यहाँ तीर्थंकर के आत्मा को सम्यग्दर्शन प्राप्त होते समय, अन्य अनेक जीवों ने भी उनके साथ सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; चारों ओर धर्म का जय-जयकार होने लगा। थोड़े समय पहले जो हाथी पागल होकर हिंसा करता था, वही हाथी अब आत्मज्ञानी होकर शांति अहिंसक हो गया है; मुनिराज के निकट धर्मश्रवण की अभिलाषा से आतुरतापूर्वक उनके सामने देख रहा है। अनेक श्रावक भी उपदेश श्रवण करने के लिये बैठे हुए हैं।

श्री मुनिराज ने मुनिधर्म तथा श्रावकधर्म का उपदेश दिया। सम्यग्दर्शन तथा आत्मज्ञान होने के बाद जब चारित्रदशा होती है अर्थात् आत्मा का प्रचुर स्वसंवेदन होने लगता है, तब मुनिदशा होती है। यह मुनि उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मों का पालन करते हैं, हिंसादिक पाँच पाप उनके किंचित् भी नहीं होते अर्थात् अहिंसादिक पाँच महाव्रत उनको होते हैं।

सम्यग्दर्शन होने के बाद जो जीव मुनि नहीं हो सकते, वह जीव श्रावकधर्म का ग्रहण करते हैं; उनके आत्मज्ञानसहित अहिंसा इत्यादि पाँच अणुव्रत होते हैं। तिर्यंचगति में भी श्रावकधर्म का पालन हो सकता है। इसलिये हे गजराज! तुम श्रावकधर्म अंगीकार करो।

मुनिराज से धर्म का उपदेश श्रवण करके अनेक जीवों ने व्रत धारण किये। हाथी को भी मुनि होने की भावना जागृत हुई कि अगर मैं मानव होता तो मैं भी उत्तम मुनिधर्म को अंगीकार करता; इसप्रकार मुनिधर्म की भावना सहित श्रावकधर्म अंगीकार किया; अर्थात् मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके उसने पाँच अणुव्रत अंगीकार किये... वह श्रावक बना।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करके श्रावक होने के बाद वज्रघोष हाथी बारंबार मस्तक झुकाकर अरविंद मुनिराज को नमस्कार करने लगा तथा उपकार मानने लगा। हाथी की ऐसी धर्मचेष्टा देखकर श्रावक बहुत हर्षित हुए। जब मुनिराज ने घोषणा की कि—इस हाथी का जीव आत्मा की उन्नति करता हुआ भरतक्षेत्र में २३वाँ तीर्थंकर होगा, तब तो सभी के हर्ष का पार नहीं रहा; हाथी को धर्मात्मा समझकर अत्यंत वात्सल्यतापूर्वक उसको निर्दोष आहार देने लगे।

यात्री संघ ने थोड़े समय तक उस वन में विश्राम करने के बाद सम्मेदशिखर की ओर प्रयाण किया; हाथी का जीव कुछ भवों के बाद इसी सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त करनेवाला है, जिसकी यात्रा करने संघ जा रहा है। अरविंद मुनिराज भी संघ के साथ विहार करने लगे, तब हाथी भी अत्यंत विनयपूर्वक अपने गुरु को पहुँचाने के लिये थोड़ी दूर तक पीछे पीछे गया... अंत में बारंबार मुनिराज को नमस्कार करता हुआ गद्गद् भावों से वापस अपने वन में आया।

हाथी अब पंचव्रत सहित निर्दोष जीवन व्यतीत करता है; स्वयं जिस शुद्धात्मा का अनुभव किया है, उसका बारबार चिंतन करता है। किसी भी जीव को वह दु:खी नहीं करता; जिससे हिंसा हो, वैसा भोजन वह नहीं करता; शांतभाव से रहकर सूखे घास-पत्ते-फल खाता है; किसी समय उपवास भी करता है। चलते समय देख-देखकर पांव रखता है। हथिनियों का संग उसने त्याग दिया है। विशालकाय होने के कारण अन्य जीवों को दु:ख नहीं पहुँचे, इसलिये अपने शरीर को अधिक चलाता नहीं है, वन के प्राणियों के साथ शांति से रहता है।

पूर्वभव का उसका भाई कमठ-जोकि क्रोध से मरकर तीव्र विषैला सर्प हुआ है, वह भी इसी वन में रहता है, और जीव-जंतुओं को मारकर खाता रहता है।

एक दिन हाथी को प्यास लगी और वह पानी पीने के लिये सरोवर के समीप गया; तालबा के किनारे वृक्षों पर अनेक बंदर रहते थे, वह इस हाथी को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। सरोवर का निर्मल जल देखकर हाथी पानी पीने के लिये सरोवर में उतरा; किंतु उसके पाँव गहरे कीचड़ में फँस गये... ज्यों-ज्यों कीचड़ में से निकलने का प्रयास करता, त्यों-त्यों पाँव कीचड़ में गहरे धँसते गये। अपने को कीचड़ में से निकालना अशक्य समझकर हाथी ने आहार-पानी का त्याग करके समाधिमरण की तैयारी की; वह पंचपरमेष्ठी का स्मरण करता हुआ आत्मा का चिंतन करने लगा।

वैराग्यपूर्वक वह सोचने लगा कि अरे! अज्ञान से कुमरण तो मैंने अनंतबार किये; परंतु अब यह अवतार सफल है कि जिसमें मुझे आत्मा का भान हुआ और समाधिमरण का सुअवसर मिला। श्री मुनिराज ने मेरे ऊपर महान कृपा करके देह से भिन्न मेरा स्वरूप मुझको दिखलाया, मेरा निधान मेरे को दिखाया; उनकी कृपा से मेरा निजवैभव मैंने मेरे में देखा। बस, अब इस देह से भिन्न आत्मा की भावना करके मैं समाधिमरण करूँगा।

हाथी को कीचड़ में फँसा हुआ देखकर वन के बन्दर दौड़धूप करते हुए हाथी को बचाने के लिये किकियारी करने लगे... किंतु छोटे-छोटे बंदर उस विशालकाय हाथी को किसप्रकार बाहर निकाल सकते थे? इतने में कमठ का जीव जो सर्प बना था, वह फूँकार करता हुआ वहाँ आया; हाथी को देखते ही पूर्वभव के वैर के संस्कारों के कारण तीव्र क्रोधित होकर दौड़कर हाथी को डस लिया। कालकूट विषवाले सर्प के द्वारा डसे जाने के कारण हाथी को तीव्र विष चढ़ गया और कुछ ही समय में उसका मरण हो गया। परंतु इस समय उसने पूर्वभव के समान आर्तध्यान नहीं किया, किंतु आत्मज्ञान सहित धर्म की उत्तम भावना का चिंतन करते हुए समाधिमरण करके शरीर को त्यागकर बारहवें स्वर्ग का देव हुआ।

सर्प ने हाथी को डसा, यह देखकर बंदरों ने अत्यंत क्रोधायमान होकर उस सर्प को मार डाला; पापी सर्प आर्तध्यान से मरकर पाँचवें नरक में गया। एक भव के दोनों सगे भाई, किंतु अपने-अपने पुण्य-पाप के अनुसार एक स्वर्ग में जाता है, दूसरा नरक में जाता है।

इसके पश्चात् क्या हुआ? सो देखिये—

वह हाथी का जीव मनुष्य होकर अग्निवेग नाम के मुनिराज हुए, और सर्प का जीव अजगर होकर उस मुनि को खा गया; एक स्वर्ग में गया... दूसरा नरक में गया।

इसके बाद हाथी का जीव विदेहक्षेत्र में वज्रनाभी चक्रवर्ती हुआ; वह मुनि होकर ध्यान में बैठे थे; वहाँ सर्प का जीव जो कि भील हुआ है, उसने बाण मारकर उस मुनि को मार डाला। फिर एक जीव स्वर्ग में गया, दूसरा नरक में।

फिर इसके बाद, हाथी का जीव आनंदकुमार नाम का राजा हुआ, और सर्प (कमठ) का जीव सिंह हुआ। आनंदकुमार ने मुनिराज होकर तीर्थंकरनामकर्म बाँधा; एकबार वे ध्यान में बैठे थे कि इतने में सिंह आकर उनको खा गया। एक स्वर्ग में गये, दूसरा नरक में।

अंत में, स्वर्ग से आकर वह हाथी का जीव वाराणसी (काशी) नगरी का राजकुमार हुआ। उसका नाम पारसनाथ। वे ही हमारे तेईसवें तीर्थंकर हुए। हाथी के भव में आत्मा

की पहचान की उसके प्रभाव से आगे बढ़ते-बढ़ते वे केवलज्ञानी बनें, और सम्मेदशिखरजी सुवर्णभद्र-टूंक से श्रावण सुदी सप्तमी के दिन मोक्ष पधारे।

वाह! देखो जैनधर्म का प्रभाव! उसके आश्रय से एक हाथी का जीव भी आत्मा की पहचान करके आगे बढ़कर परमात्मा बन गया। बंधुओं! हमें भी ऐसा जैनधर्म प्राप्त हुआ है, अत: हमें भी हाथी की तरह आत्मा की पहचान करके परमात्मा बनना चाहिये।

साथ में एक बात और जान लो—जिस कमठ के जीव ने सर्प-अजगर-भील तथा सिंह होकर हाथी के जीव को मारा; उस जीव ने, जब वह हाथी का जीव भगवान बन गया, तब उन्हीं से धर्म प्राप्ति की, और अपने आत्मा की पहचान करके वह स्वर्ग में गया। थोड़े समय में वह भी मोक्षपद पावेगा।

सम्यग्दर्शन के प्रताप से हाथी में से जो भगवान बन गये, उन परमात्मा को नमस्कार है।

[दूसरे हाथी की कहानी समाप्त हुई।]

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, 'पर' से कुछ भी संबंध नहीं।

मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ;
मैं हूँ अखंड चैतन्यपिंड, निजरस में रमनेवाला हूँ।

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं;
मैं मुझमें रहनेवाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं।

मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक, परपरिणति से अप्रभावी हूँ;
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ॥

आत्म-स्तवन

अनेकांतमूर्ति भगवान आत्मा की ४७ शक्तियों का सुंदर वर्णन

जीव है अनंती शक्तिसंपन्न राग से वह भिन्न है;
उस जीव को लक्षित कराने 'ज्ञानमात्र' वदंत है।
एक ज्ञानमात्र ही भाव में शक्ति अनंती उल्लसे;
यह कथन है उन शक्ति का भवि जीव जानों प्रेम से।
'जीवत्व' से जीवे सदा जीव चेतता 'चिति' शक्ति से;
'दृशि' शक्ति से देखे सभी अरु जानता वह 'ज्ञान' से।
आकुल नहिं 'सुख' शक्ति से, निज को रचे निज 'वीर्य' से;
'प्रभुत्व' से वह शोभता, व्यापक है 'विभु' शक्ति से।

सामान्य देखे विश्व को यह 'सर्वदर्शि' शक्ति है;
जाने विशेषे विश्व को 'सर्वज्ञता' की शक्ति है।

जहँ दीसता है विश्व सारा शक्ति यह 'स्वच्छत्व' की;
है स्पष्ट स्वानुभवमयी यह शक्ति जान 'प्रकाश' की।

'विकास में संकोच नहीं' यह शक्ति तेरवीं जानना;
'नहिं कार्य-कारण' कोई का है भाव ऐसा आत्म का।

जो ज्ञेय का ज्ञाता बनें अरु ज्ञेय होता ज्ञान में;
उस शक्ति को 'परिणम्य-परिणामक' कहा है शास्त्र में।

'नहीं त्याग कि नहीं ग्रहण' बस! निजस्वरूप में जो स्थित है;
स्वरूपे प्रतिष्ठित जीव की शक्ति 'अगुरुलघुत्व' है।

'उत्पाद-व्यय-ध्रुव' शक्ति से जीव क्रम-अक्रम वृत्ति धरे;
है सत्पना 'परिणामशक्ति', नहीं फिरे तीन काल में।

नहीं स्पर्श जाणो जीव में आत्मप्रदेश 'अमूर्त' है;
कर्ता नहीं परभाव का ऐसी 'अकर्तृ' शक्ति है।

भोक्ता नहीं परभाव का ऐसी 'अभोक्तृ' शक्ति है;
'निष्क्रियता' रूप शक्ति से आत्मप्रदेश निस्पंद है।

असंख्य निज अवयव धरें, 'नियतप्रदेशी' आत्म है;
जीव देह में नहीं व्यापता, 'स्वधर्म-व्यापक' शक्ति है।

स्व-पर में जो सम अरु विसम तथा जो मिश्र है;
त्रयविध ऐसे धर्म को निजशक्ति से आत्मा धरें।

जीव नंत भावों धारता 'अनंतधर्म की' शक्ति से;
तत्-अतत् दोनों भाव वरते 'विरुद्धधर्म' की शक्ति से।

जो ज्ञान का तद्रूप-भवन सो 'तत्त्व' नामक शक्ति है;
जीव में अतद्रूप परिणम जानों 'अतत्त्व' की शक्ति से।

बहुपर्ययों में व्यापता एक द्रव्यता को नहिं तजे;
निज स्वरूप की 'एकत्व' शक्ति जान जीव शांति लहे।

जीव द्रव्य है एक फिर भी 'नैक' पर्ययरूप बने;
स्वपर्ययों में व्याप कर जीव सुखी ज्ञानी सिद्ध बनें।

है 'भावशक्ति' जीव की सत्रूप अवस्था वर्तती;
फिर असत्रूप है पर्ययों 'अभाव-शक्ति' जीव की।

'भाव का होता अभाव' 'अभाव का फिर भाव' रे;
ये शक्ति दोनों साथ रहती ज्ञान में तूं जान ले।

जो 'भाव रहता भाव' ही, 'अभाव नित्य अभाव' है;
स्वभाव ऐसा जीव का निजगुण से भरपूर है।

नहि कारकों को अनुसरे ऐसा ही 'भवता भाव' है;
जो कारकों को अनुसरे सो 'क्रिया' नामक शक्ति है।

है 'कर्मशक्ति' आत्म में वह धारता 'सिद्धभाव' को;
फिर 'कर्तृशक्ति' से स्वयं बन जाते 'भावक' रूप वो।

है ज्ञानरूप जो शुद्धभावों उनका जो भवन है;
आत्मा स्वयं उन भाव का उत्कृष्ट 'साधन' होत है।

निज 'करण-शक्ति' जान रे! तू बाह्यसाधन शोध मा;
आत्मा ही तेरा करण है फिर बात दूजी पूछ मा।

निज आतमा निज आत्म को ही ज्ञानभाव जो देत है;
उसका ग्रहण है आत्म को यह 'संप्रदान' स्वभाव है।

उत्पाद-व्यय से क्षणिक है पर ध्रुव की हानि नहीं;
सेवो सदा सामर्थ्य ऐसे 'अपादान' का आत्म में।

भाव्यरूप जो ज्ञानभावों परिणमे है आत्म में;
'अधिकरण' उनका आत्म है, सुन लो अहो जिनवचन में।

है 'स्व अरु स्वामित्व' मेरा मात्र निजस्वभाव में,
नहीं स्वत्व मेरा है कभी निज भाव से को अन्य में।

***

अनेकांत है जयवंत अहो! निजशक्ति को प्रकाशता,
शक्ति अनंती मेरी वह मुज ज्ञान में ही दिखावता।
यह ज्ञानलक्षणभाव सह भावों अनंत उल्लसे,
अनुभव करूँ उनका अहो! विभाव कोई नहीं दीसे।
जिनमार्ग पाया मैं अहो! श्रीगुरुवचनप्रसाद से,
देख्या अहा निजरूप चेतन, पार जो परभाव से।
निजविभव को देखा अहो, श्री समयसार-प्रसाद से,
निजशक्ति का वैभव अहो! यह पार है परभाव से।
ज्ञानमात्र ही एक ज्ञायक-पिण्ड हूँ मैं आतमा,
अनंत गंभीरता भरी मुज आत्म ही परमातमा।
आश्चर्य अद्भुत होत है निजविभव की पहचान से,
आनंदमय अह्लाद उछले मुहूर मुहूर ध्यान से।
'अद्भुत अहो! अद्भुत अहो!' छे विजयवंत स्वभाव आ,
जयवंत छे मुज गुरु-वहाला, निजनिधान बताविया॥

श्री समयसार में अमृतचंद्रसूरि ने चैतन्य की ४७ शक्तियों का जो अद्भुत वर्णन किया है, उसका प्रवचन करते समय पूज्य स्वामीजी के हृदय में श्रुतसागर की भरती आती है, और ज्ञानसमुद्र का मंथन करके अध्यात्मरस का अमृत निकालते हैं; उस अमृत का अपूर्वस्वाद चखकर जो आनंद आया-उसकी क्या बात? यह आनंद की उर्मियाँ इस 'आत्मस्तवन' में व्यक्त की गई हैं। पूज्य गुरुदेव ने यह पढ़कर प्रसन्नता प्रकट की है और उन्हीं आशीर्वाद से वह यहाँ दिया जाता है। श्री गुरुप्रसादरूप यह आत्मस्तवन भव्यजीवों को अद्भुत आत्मवैभव की प्राप्ति का कारण हो। —जय महावीर। (—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

चेतन और काया के बीच में वाद-विवाद

[श्रीगुरु न्यायाधीश होकर फैसला देते हैं]

चेतनमय आत्मा, तथा पुद्गलमय काया, इन दोनों का स्वरूप एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। अनादि कर्म संयोग से आत्मा और काया एक क्षेत्र में रहते हुए भी दोनों का परिणमन एक-दूसरे से भिन्न है। अनादि से अज्ञानी एक शरीर को छोड़कर दूसरी गति में गमन करता है, परंतु शरीर उसके साथ नहीं चलता।—ऐसी भिन्नता को नहीं जाननेवाला एक अज्ञानी शरीर को अपना मान करके मृत्यु के समय भी उसको अपने साथ रखना चाहता है और शरीर से प्रार्थना करता है कि रे काया! तू मेरे साथ चल!

- परंतु काया इंकार करके कहती है कि मैं जलकर भस्म हो जाऊँगी परंतु तेरे साथ नहीं जाऊँगी।
- आत्मा कहता है कि हे काया! मैंने जीवनभर तेरी पुष्टि की, तेरे लिये अनेक पाप किये, अत: अब तू मेरे साथ जरूर आ।
- काया कहती है-नहीं; मेरा तो स्वभाव ही ऐसा है कि जीव के साथ नहीं जाना; जुदा ही रहना।

— इसप्रकार वादविवाद करते हुए जीव और काया दोनों वादी-प्रतिवादी होकर श्रीगुरु के पास में आये, और अपने-अपने पक्ष की दलीलें करके न्याय की याचना की। तब दोनों पक्ष की दलीलें सुनकर श्रीगुरु ने सत्य न्याय करके फैसला दिया। कौन-सा फैसला दिया? सो आप इस काव्य में पढ़ेंगे।

चेतन और काया के वाद-विवादरूप यह राचेक एवं बोधप्रद पद्यरचना कवि श्री छोटेलालजी जैन द्वारा रची गई है। यह रचना बालकों, नाटकरूप से भी प्रयोग में ला सकते हैं, इसके संवाद आकर्षक हैं। सोलापुर के ककुबाई श्राविकाश्रम की बालाओं ने यह संवाद नाटकरूप से दिखलाया था जो सभी को पसंद आया था। हम यहाँ मराठी 'सन्मति' पत्रिका से उद्धृत करके साभार यहाँ दे रहे हैं। (—सं.)

प्रस्तावना- काया चेतन में हुआ, एक दिन तकरार।
श्री मुनिवर के निकट जा, चेतन करी पुकार॥ (१)

(चेतन)- हे नाथ! काया यों कहती, नहीं साथ तुम्हारे चलती हूँ
तुम्हारा मेरा साथ यहीं तक, अब मैं यहीं पर रहती हूँ।
कैसे छोड़ूं मैं इसको, हा! बड़े प्यार से पाला था
इसके खातिर स्वामी मैंने, घर पर डाका डाला था
इस प्रकार ये झगड़ रही है, मूरख नादानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को? (२)

(गुरुदेव) चेतन की करुणा भरी, श्रीगुरु सुनी पुकार
काया से पूछत गुरु, यों मृदु वचन उचार।
ये काया! क्या बात है, चेतन के प्रतिकूल,
तुम भी अपनी बात को, बतलाओ अनुकूल॥ (३)

(काया-) बोली काया रे गुरु! सुनो हमारी बात।
ये चेतन तो मूरख है, करै अनाड़ी बात।
'चलो हमारे साथ तुम', ये चेतन यों कहता है।
मेरे कुल की रीत अनादि, यह सब मेटन चाहता है॥
इंद्र-नरेंद्र-धरणेंद्र के संग, नहीं गयी सब जानत है।
ये चेतन मूरख अभिमानी, मुझसे प्रीति ठानत है॥
छोड़ दियो संग मैंने स्वामी, तीर्थंकर सम ज्ञानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को? (४)

(गुरुदेव-) कहो चेतनजी! इस दलील पर आपका क्या कहना है?
काया में नहीं चेतनता फिर उसे तुम्हें क्या करना है?

(चेतन-) इस काया को बड़े प्यार से, लड्डू खूब खिलाये थे।
चिलगूजा, अकरोड और अंगुरादिक मंगवाये थे।

पिस्ता किसमिस दाख छुहारे, अरु इलायची लाया था।
स्वर्णभस्म तथा मकरध्वज, इसको खूब खिलाया था।
फिर भी ये यों कहती है, नाहक खींचातानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (५)

(काया-) ये चेतन झूठा है स्वामी! झूठी बातें बकता है।
मनमानी करता रहता खुद, बदनामी मेरी करता है।
मैंने कब चाहे लड्डू अरु मोहनभोग मसालों को?
स्वर्णभस्म या मकरध्वज ये, चाहिये इन मतवालों को।
मैं चेतन के चक्कर में पड़, सह रही हूँ बदनामी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (६)

(चेतन-) कोट बूट पतलून पहनकर, इसको खूब सजाया था।
इतने पर भी न हुई राजी, तब शिरपर टोप लगाया था।
नेकटाई भी गले बाँधकर, इसकी शान बढ़ाई थी।
गांधी टोपी भी सिर पर रख, इज्जत खूब बढ़ाई थी॥
किंतु आज मेरी मेहनत पर, फेर रही है पानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (७)

(गुरुदेव-) 'री काया! चेतन जो कह रहा है इसका क्या कोई समाधान है?'

(काया-) सुनिये गुरुदेव! यह तो केवल अज्ञानभरा बकवास ही है। देखिए-
मेरा स्वभाव जड़ है स्वामी! ये चेतन अभिमानी है।
यह अपने अभिमान-विवश हो, करता खींचातानी है।
स्वयं कोट पतलून पहन, बहुरूपी वेष बनाता है।
अपनी मनमानी करता, अरु मुझको नाच नचाता है॥
देख देख पछताती हूँ मैं चेतन की नादानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (८)

(गुरुदेव-) 'कहो चेतनजी! इस पर आपका क्या कहना है?'

(चेतन-) दूध मलाई हलुआ रबडी, मोहन-भोग खिलाये थे।
और इत्र फल-फूलों का, इसने ही नित मंगवाये थे।
ऊँचे-ऊँचे तेल लब्हन्डर, मधुर मधुर खुशबूवाले।
इसने ही पीये थे स्वामी शरबत के ऊँचे प्याले॥
किंतु आज यह यों कहती है, देखो खींचातानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोडूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (९)

(काया-) (जोर से हँसकर)
गुरुदेव! यह क्या पागल सरीखी बातें बकता है?
मैं हूँ जड़, ये है गुरु चेतन, इनके मेरे काम जुदे हैं।
खाते हैं खुद ये ही स्वामी, दूध मलाई पेडे हैं।
शरबत के प्याले भरभर कर, हाय! चेतनजी पीते थे।
ये ही गंध खुशबूवाले, दौड़-दौड़ कर लाते थे।
किंतु झूठा दोष लगा, मेरी करते बदनामी को।
हाय! कहो अब कैसे छोडूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (१०)

(गुरुदेव-) कहो चेतनजी! काया जो बात बता रही है, वह तो ठीक प्रतीत होती है। उस पर आप क्या कहना चाहते हो?

(चेतन-) इस पापिन के पीछे मैंने, भक्ष्याभक्ष्य सभी खाये।
आलू, गोभी और टमाटर, झोली भरभर के लाये।
रात गिनी नहिं दिवस गिना नहिं, जब आया तब ही खाया।
पिया तेल कॉडलिव्हर का अरु इंजक्शन भी लगवाया॥
इतने पर भी अकड़ अकड़ कर, बता रही मर्दानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोडूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (११)

(काया-) साफ झूठा है गुरुदेव इसका कहना! सुनिए मेरा इस पर उत्तर-

भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ हि मेरे खातिर न कभी खाये हैं।
अपनी ममता की पूर्ति हित, तुमने माल उड़ाये हैं।
रे चेतन! तू हुआ लोलुपी, रात दिवस अन्याय किया।
सुंदर नारी से रमने को मछली का भी तेल पिया॥
अरे! मैंने कई बार धिक्कारा तेरी इस नादानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (१२)

(चेतन-) गुरुदेव! आश्चर्य है इस काया की इन कृतघ्नता भरी बातों का!

इसी देह के पीछे मैंने, धर्म कर्म सब छोड़ दिया।
मात-पिता-सुत-नारि-मित्र से, मैंने नाता तोड़ दिया।
जो आज्ञाएं इसने दी, वे सब मैंने पूरी की थी।
इसके पीछे पाप पुण्य की सभी बला सिर पर ली थी।
किंतु आज देखो ये कैसी, करती है हैवानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (१३)

(काया-) आश्चर्य है गुरुदेव! हैवानी यह खुद करता है। और दोष मेरे सिर लगाता है।

इसी निगोड़े चेतन ने, सब धर्म कर्म ही छोड़ दिया,
मात-पिता-सुत-नारि-मित्र से, इसी मूर्ख ने कपट किया।
मेरी इच्छा के विरुद्ध, पापी ने पाप कमाये थे
खुद इसने ही अत्याचारों के तूफान उठाये थे॥
फिर भी दोष लगाता मुझको, धिक्कार रहो इस प्राणी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को? (१४)

(चेतन-) [अब चेतन बहुत निराश होकर करुणाभरे स्वर में कहता है—]

हे काये! मैं करूँ निवेदन, दया करो मुझ दुखिया पर
प्रीत पुरानी जरा निभालो, साथ हमारे तुम चलकर।
हाथ जोड़कर तेरे पग में, अपना शीष झुकाता हूँ,

चलो साथ, नहिं रहो यहाँ, मैं अपना कसम दिलाता हूँ॥
बार-बार मैं मांगत माफी, क्षमा करो अज्ञानी को
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (१५)

(काया-) हे चेतन मैं करूँ निवेदन, मुझे न अब तुम तंग करो,
प्रीत यहीं तक तेरी-मेरी, आगे की मत आश करो।
हाथ जोड़कर कहती हूँ, ये अनहोनी नहिं होने की,
चाहे सौ-सौ कसमें दो, या घड़ी बताओ सोने की॥
किंतु साथ नहिं गयी किसी से, पूछो ज्ञानी-ध्यानी को,
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (१६)

(चेतन-) हे गुरुदेव! दया करके, इस काया को समझा दीजे
साथ हमारे इसे भेजकर, मेरा काम बना दीजे।
पर-उपकारी दुखहारी तुम, करुणानिधो कहाते हो
छोटे से छोटा सा झगड़ा, नाहक नाथ! बढ़ाते हो॥
जरा दया कर सुन लो स्वामी मेरी करुण कहानी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी प्रीत पुरानी को?॥ (१७)

(काया-) हे गुरुदेव! दया करके इस चेतन को समझा दीजे,
यों शरीर का सत्स्वरूप इस चेतन को बतला दीजे।
दीननाथ! तुमने ही तो मुझसे सब नाता तोड़ा है।
शिव-सुंदरी के अटल प्रेम से तुमने नाता जोड़ा है॥
इसीलिए 'छोटा' कहता है, सुनो जरा जिनवाणी को।
हाय! कहो अब कैसे छोड़ूँ, अपनी रीत पुरानी को?॥ (१८)

इसप्रकार चेतन और काया दोनों की बात सुनकर अंत में श्रीगुरु संपूर्ण रीति से चेतन को अपना स्वरूप समझाते हुए कहते हैं—'रे चेतन! तू अपना अज्ञानभरा आग्रह छोड़ दे। काया का कहना ही ठीक है। परमार्थ एवं सत्त्व तत्त्व तो यही है कि तू चेतन हो, काया जड़ है; दोनों सर्वथा भिन्न हो। लेकिन तेरा मोह

और अज्ञान उस सत्तत्त्व का बोध तुझे नहीं होने देता। अज्ञान से तुम काया को अपनी मान बैठे हो। उसे तत्काल हटा दो, और काया से जुदा अपना त्रिकाल शुद्धस्वभावी आत्मा का सम्यक् स्वरूप समझ लो। क्यों व्यर्थ काया की माया में नादान बन रहे हो? उसका स्वरूप ही विनाशीक एवं अनित्य है, और आत्मा अविनाशी एवं नित्यरूप है। भैया! अब तो आँख खोल और अपनी अखण्डता, नित्यता तथा शुद्धता का साक्षात् अनुभव कर!'

गुरुदेव का यह सारभूत उपदेश सुनकर चेतन अपने अज्ञान को त्यागकर प्रबुद्ध होता है और वह खुद का स्वरूप अपने मुख से कहता है—

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञान-दर्शनमय अहो!
परमाणु मात्र न अन्य मेरा, मुझसे है बाह्य वो।
मैं देह नहीं, वाणी न, मन नहीं, उनका कारण नहीं;
कर्ता न कारयिता न अनुमंता मैं कर्ता का नहीं।

अहा, मैं तो ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। श्रीगुरु ने उपयोग लक्षण समझाकर, देह से भिन्न मेरा चैतन्यस्वरूप दिखलाया; स्वसंवेदन से चैतन्यस्वरूप को जानकर, अब देहादि अचेतनवस्तु मुझे अंशमात्र भी मेरी नहीं दिखती; वे मेरे से बाह्य है। मैं चेतन, देह अचेतन; मैं अमूर्त, देह मूर्त; मैं असंयोगी, शरीर संयोगी; मैं आनंद का धाम, शरीर अशुचि का धाम; मेरा उससे कुछ नाता-रिश्ता नहीं है; देह के भस्म होने से मेरी मृत्यु नहीं होती। देह के ऊपर मैं चाहे जितना उपकार करूँ, उसकी पुष्टि के लिये, एवं उसकी शोभा के लिये मैं चाहे जितना पाप करूँ—फिर भी यह कृतघ्नी काया मेरा कुछ भी उपकार करनेवाली नहीं है; उसके लिये मैंने जो पाप किया उस पाप के फल भोगने को वह मेरे साथ आनेवाली नहीं है। अतः उसका मोह छोड़कर अब मुझे मेरा हित करना है-जिससे कि फिर कभी ऐसी काया का संग ही न मिले।

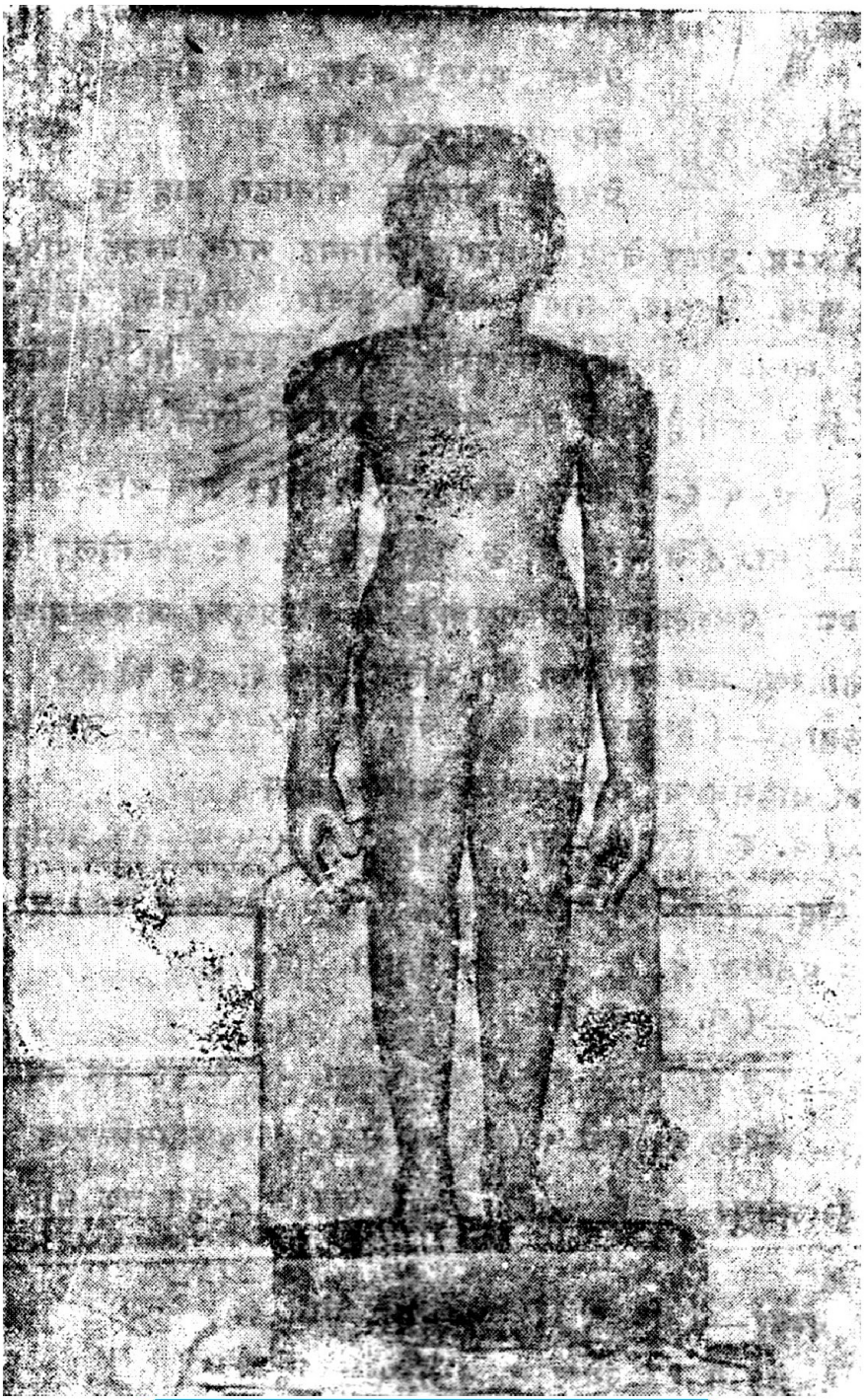

श्री कानजीस्वामी का प्रवास-कार्यक्रम

भारत में भगवान महावीर के निर्वाण का ढाई हजार वर्षीय महान उत्सव चल रहा है, जगह-जगह धर्मचक्र का प्रवर्तन हो रहा है; समाज में बहुत उत्साह है। ऐसे समय में वीरनाथ प्रभु के पंचकल्याणक एवं तीर्थयात्रा वगैरह मंगल प्रसंग के निमित्त से पूज्य श्री कानजीस्वामी का मंगल प्रवास भारत में अनेक जगह होनेवाला है-जिसमें आप वीरनाथ का इष्टउपदेश क्या है यह सुनायेंगे। आपके प्रवास का कार्यक्रम सोनगढ़ से माह सुद प्रतिपदा तारीख ११ फरवरी से प्रारंभ होकर जेतपुर, गिरनार, सोनगढ़, सूरत, बम्बई, पीपलानी-भेपाल, बेगमगंज, खुरई, सनावद, सागर, बीना, इंदौर, लोहारदा, खातेगाँव, बड़नगर, सिद्धवरकूट, खंडवा, जलगाँव, धरणगाँव होकर बम्बई तारीख ५ अप्रेल चै. कृ. ९ तक का गतांक में दिया है, इसके बाद आगे का कार्यक्रम निम्न प्रकार है:—

- **मद्रास**—(ता. ५-६-७ अप्रेल; चैत्र कृ. ९-१०-११, शनि-रवि-सोम)
- **बेंगलोर**—(ता. ८ से २३; चैत्र कृ. १२ से चैत्र शु. १३ तक सोलह दिन) यहाँ महावीर प्रभु का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, वीरप्रभु का जन्मकल्याणक, तथा धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन है। प्रतिष्ठा चैत्र शु. १३ की है।
- **श्रवणबेलगोल**—(बाहुबली यात्रा) चैत्र शु. १४-१५ तारीख २४-२५ अप्रेल) जिसमें गुजरात का यात्रासंघ भी धर्मचक्रसहित शामिल होगा।
- **बम्बई**—(चैत्र कृ. १ से २० ता. २६-४-७५ से ५-५-७५ तक दश दिन)
- **अहमदाबाद**—वै. कृ. ११ से वै. सु. २ (ता. ६ से १३ तक ८ दिन) पूज्य कानजीस्वामी की ८६वीं जन्मजयंती वै.सु. २ के दिन मनायी जावेगी।
- **सुरेन्द्रनगर**—(वै.सु. ३ से ७)
- **राजकोट**—(वै.सु. ८ से ज्येष्ठ कृ. १; ता. १८ से २६ तक नव दिन)
- **जामनगर**—ज्येष्ठ कृ. २ से ५ (ता. २७ से ३०) स्वाध्यायमंदिर का उद्घाटन।
- तारीख ३१ **जयपुर** होकर, **कोटा** ता. १ जून से ८ जून तक धार्मिक शिक्षणशिविर चलेगा।
- **कोटा से बम्बई**—(ता. ९); **भावनगर** (ता. १०)
- **लाठी**—ता. ११ से १४ ज्येष्ठ सुद. २ से ५
- **सोनगढ़**—ता. १५ जून ज्येष्ठ सुद ६ रविवार को मंगल आगमन।

❀ श्री महावीर-निर्वाणमहोत्सव तथा धर्मचक्र-प्रवर्तन समाचार ❀

बेंगलोर — श्रवणबेलगोला से धर्मचक्र का आगमन होने पर समस्त जैनसमाज ने हिलमिलकर स्वागत किया; विमान से पुष्टवृष्टि हुई; पाँच हजार लोगों ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जाहिर सभा में दस हजार की उपस्थिति। अच्छी प्रभावना हुई।

खनियांधाना — इंदौर से प्रारंभ होकर धर्मचक्र यहाँ पधारने पर अपार जनसमूह द्वारा भव्य स्वागत किया गया।

इसीप्रकार महावीर भगवान के पावन धर्मचक्र के द्वारा भारत भर में जगह-जगह अच्छी धर्मप्रभावना व प्रचार हो रहा है। सभी जगह के समाचारों को हम स्थान नहीं दे सकते हैं-सो क्षमा करें।

हिन्दी समाचार भेजनेवाले बंधुओं को खास सूचना है कि कृपया आप स्पष्ट सुवाच्य अक्षरों में लिखें तथा टाइप की गई तीसरी-चौथी प्रति न भेजकर पहली ही प्रति भेजें। एक तो हमारी मातृभाषा हिन्दी नहीं है; फिर अस्पष्ट अक्षर तथा तीसरी-चौथी प्रतिलिपि आने से पढ़ना भी मुश्किल हो जाता है।

सुखी होने का सरल उपाय

❀ आपको-हमको-सबको सुखी होना है न?—हाँ, हमें जरूर सुखी होना है।—तो चलो, हम सोचे सुखी होने का सरल उपाय—

❀ क्या मोक्ष के बिना पूर्ण सुख हो सकता है?.....नहीं।

❀ क्या मुनिदशा के बिना मोक्ष हो सकता है?.....नहीं।

❀ क्या आत्मज्ञान के बिना मुनिदशा हो सकती है?.....नहीं।

❀ क्या ज्ञानस्वभाव के निर्णय के बिना आत्मज्ञान हो सकता है?.....नहीं।

❀ क्या सर्वज्ञ की पहचान के बिना ज्ञानस्वभाव का निर्णय हो सकता है?.....नहीं।

❀ तो क्या सर्वज्ञ के स्वरूप की पहचान से आत्मज्ञान हो जायेगा?.....हाँ, जरूर।

❀ और आत्मज्ञान होने से मोक्ष हो जायेगा?—हाँ; आत्मज्ञान होने से अल्पकाल में मुनिदशा हो करके अवश्य मोक्ष भी हो जायेगा।

— अतः जिसे सुखी होना हो वे —

❀ सर्वज्ञ को पहचानकर उनके जैसा अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करो।

❀ ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके स्वानुभव से सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान करो।

❀ सम्यग्दर्शन-ज्ञान करके वैराग्यपूर्वक शुद्धोपयोग से मुनिदशा प्रगट करो।

❀ मुनि हो करके आत्मस्वरूप में लीनता से केवलज्ञानरूप मोक्षदशा करो।

❀ बस, फिर तो हमें सुख ही सुख होगा! सुख की कोई कमी नहीं रहेगी। वाह भाई वाह! सुखी होने की कैसी अच्छी सुगम रीत!

आओ साधर्मीजनों! हम सब हिलमिलकर इसी रीति से सुखी बनें !!

पढ़िये.... और खोजिये

आप सब जिज्ञासु जिस उत्साह के साथ इस योजना में भाग ले रहे हो, यह देखकर प्रसन्नता होती है। धन्यवाद! आपका स्वाध्याय का उत्साह बढ़ रहा है, यह आपके लिये एवं समाज के लिये भी अच्छी बात है। अबकी बार दस वाक्यों को शोधकर लिख भेजनेवाले को 'भगवान हनुमान' का सुंदर गुजराती पुस्तक भेंट दिया जायेगा। पुस्तक गुजराती में होने पर भी आप अच्छी तरह समझ सकेंगे। फिर भी यदि आप गुजराती पुस्तक न चाहते हो तो लिखने से भगवान महावीर का चित्र भेजा जायेगा। उत्तर भेजने का पता - संपादक आत्मधर्म, सोनगढ़ (३६४२५०)

(१) चेतन जीवन वीरपंथ में.....

(२) जैनं जयतु शासनम्.....

(३) भगवान महावीर ऐसे सर्वज्ञ है—इसप्रकार सर्वज्ञरूप से.....

(४) हे सिद्ध परमात्मा! आप केवलज्ञान की मूर्ति हो.....

(५) जो सिद्धभगवान में हो वह स्व... जो सिद्धभगवान में.....

(६) कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये.....

(७) स्वाधीनसत्ता का निर्णय 'हे वीरनाथ भगवान!' आपके शासन में.....

(८) सुनो! एक था दूसरा हाथी। उसका नाम—

(९) सम्यग्दर्शन के प्रताप से हाथी में से जो भगवान बन गये—

(१०) हमारा चित्त समस्त संसार से विरक्त होकर चैतन्य में लगा है।

सर्वज्ञ महावीर का इष्टउपदेश

['उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्']

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्। भगवान सर्वज्ञदेव ने जगत के समस्त पदार्थों को उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप देखे हैं। कोई भी सत् वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवता ऐसे तीन भावस्वरूप एकसाथ वर्तती है। आत्मा हो या जड़ हो—प्रत्येक वस्तु स्वयमेव उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप हे, उसमें अन्य किसी की अपेक्षा नहीं है। 'सत्' अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। वस्तु का स्वभाव अन्य से निरपेक्ष होता है। जैसे—आत्मा का चेतनस्वभाव, उसका सत्पना अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखता; शरीर हो तो चेतनस्वभाव रहे, इंद्रियाँ हो या राग हो तो चैतन्यस्वभाव टिके—ऐसी अपेक्षा उसको नहीं है; शरीर-इंद्रियाँ या राग - इनकी अपेक्षा के बिना ही आत्मा स्वयमेव चेतनस्वभावी है। उसीप्रकार पुद्गलादि स्वयमेव अचेतनस्वभावी सत् है, वह जीव की अपेक्षा नहीं रखता।

सम्यक्त्वादि किसी एक वर्तमान भावरूप से उत्पाद, उसी समय पूर्व के मिथ्यात्वादि भावरूप से व्यय, तथा उसी समय जीवत्व आदि स्वभाव भावों से ध्रुवता,—इसप्रकार एक ही समय में जीव अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे तीनों भावस्वरूप वर्तता है; एवं इसीप्रकार से तीनों काल के परिणाम-प्रवाह में वह अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप ही रहता है। सर्वज्ञ-उपदिष्ट ऐसा वस्तुस्वरूप जानने से जीव को मोह का नाश होकर इष्ट की प्राप्ति होती है।

अहा, एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवता का होना, और वह भी अन्य किसी के किये बिना—ऐसा सूक्ष्म वस्तुस्वरूप सर्वज्ञ के बिना दूसरा कोई नहीं जान सकता। अतः सर्वज्ञ के महान स्तुतिकार समंतभद्रस्वामी सर्वज्ञ की स्तुति करते हुए कहते हैं कि अहो जिनदेव! विश्व के सभी पदार्थ प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, ऐसा आपका यह कथन ही आपकी सर्वज्ञता का चिह्न है।

ऐसा वस्तुस्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त और कोई जान भी नहीं सकता, कह भी नहीं

सकता; और सर्वज्ञ के अनुयायी के बिना और कोई यह बात झेल नहीं सकता। अहो, सर्वज्ञदेव! आपका अनेकांतशासन विश्व में अजोड़ है। (अन्य ज्ञानीजन जो प्रतिपादन करते हैं, वह भी सर्वज्ञ परंपरा के अनुसार ही करते हैं।)

किसी भी समय कोई भी वस्तु में ऐसा नहीं बनता कि उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसमें न हो। सभी वस्तु प्रत्येक समय अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप अपने सद्भाव में ही रहती है, उसे वह कभी नहीं छोड़ती।

अहो, मेरा उत्पाद-व्यय-ध्रुव मेरे से भिन्न नहीं है, एवं किसी अन्य के द्वारा वह नहीं होता। मेरा अस्तित्व (-विद्यमानता) मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रुव में है।

मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रुव से बाहर जाकर अन्य में मैं कुछ करूँ—ऐसा मेरा अस्तित्व है ही नहीं। अन्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वयं उसके अस्तित्व में है, वह मेरे से नहीं होता।

—ऐसी स्वतंत्रता के सम्यग्ज्ञान में वीतरागता है।
स्वतंत्रता जानने से स्व-पर की भिन्नता का ज्ञान होता है।
स्व-पर की भिन्नता जानने से स्वतत्त्व में संतोष होता है।
स्वतत्त्व में संतुष्ट होने पर स्वाश्रय से वीतरागभाव होता है।
वीतरागता में ही सुख है; और सुख जीव का इष्ट है।
इसप्रकार इष्ट की प्राप्ति का यह उपाय है।
और यही महावीर प्रभु का इष्ट उपदेश है॥

आतम परमातम है तेरा... उसको तूं पहिचान

मन मंदिर में झांक ले चेतन, सोच अरे इंसान।
आतम परमातम है तेरा, उसको तू पहिचान॥
इत, उसको तू मन को लगावे... निज आतम में ध्यान न लावे,
पर चिंता को छोड़के चेतन निज को तू पहिचान।
आतम परमातम है तेरा उसको तू पहिचान॥
जीवन तेरा है इक सपना... क्यों तू करता अपना-अपना,
सपना देखनेवाले मानव! सपना दुख की खान।
आतम परमातम है तेरा उसको तू पहिचान॥
न्याय नीति से रह ले जगत में... क्या भेद है निज और पर में,
अपने आतम को पहिचानो पावो सुख महान।
आतम परमातम है तेरा उसको तू पहिचान॥
धर्म अहिंसा मन में बिठाले... आतम ज्ञान की ज्योति जगाले॥
ज्योति प्रकाश हो त्रिलोक नेमी, आतम सुख महान।
आतम परमातम है तेरा उसको तू पहिचान॥

[—नेमीचंद जैन, इटावा]

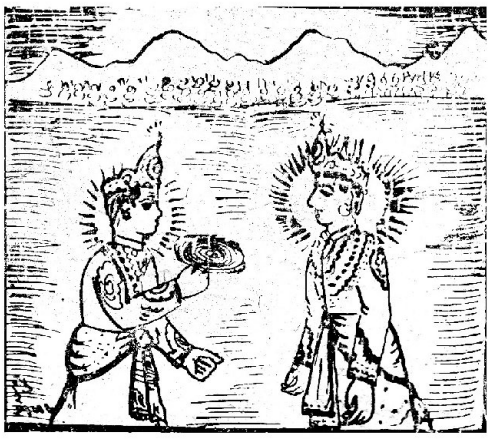

भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत और बाहुबली.... दोनों लड़े.... एकबार... दो बार... तीन बार... तीनों में भरत हार गया। अरे! मैं चक्रवर्ती... और मेरा ऐसा अपमान!!—क्रोधित हो भरत ने बाहुबली के ऊपर चक्र फेंका। चारों तरफ हा-हाकार हो गया... फिर क्या हुआ?

भगवान बाहुबली का वैराग्य-चिंतन

सुना सुना वे संसार
असार असार रे संसार

चेतनपद मेरा ही सार
सुंदर जिसमें शांति अपार

जब भरत ने चक्र छोड़ा... उसी समय बाहुबली को संसार से वैराग्य हुआ; वे सोचने लगे—अरे, यह संसार! जिसमें लोभवश या क्रोधवश भाई, भाई का प्राण लेने को तैयार होते हैं—यह संसार असार है; यह कषाय दुःखमय है; मेरा चैतन्यतत्त्व परम शांत है, बस! एक यही सार है। समस्त संसार-भोग-कषायों को छोड़कर अब मैं तो मुनि होऊंगा, और मेरे चिदानंदतत्त्व की शांतअनुभूति में लीन होकर मुक्ति पाऊँगा।

मैंने देखा संसार असार... ऐसे संसार में नहीं जाऊँ नहीं जाऊँ नहीं जाऊँ रे।
मेरा चेतनपद एक सार... उसी में लीन होऊँ... लीन होऊँ.... लीन होऊँ रे॥

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) कार्तिक (३५७)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति ३०००